साम्यवादका बिगुल

(साम्यवादी साहित्यकी उत्कृष्ट पुस्तक)

लेखक—

सर्व श्री सम्पूर्णानन्द, आचार्य नरेन्द्रदेव, श्रीप्रकाश,
जयप्रकाश नारायण, दामोदर स्वरूप सेठ,
गोविन्द सहाय बी० काम ।

प्रकाशक—

काशी पुस्तक भण्डार

प्रोप्राइटर—एस. बी. सिंह, एण्ड को०
चौक, बनारस ।

द्वितीय बार]   १९४०   [मूल्य १)

प्रकाशक—
काशी-पुस्तक-भण्डार,
चौक, बनारस ।

योग साधन

(ले० योगिराज श्री अरविन्द घोष)

योगिराजने इस पुस्तकमें यह बतलाया है कि हठयोग और राजयोगके सिवा योगका एक और मार्ग है जिसे 'तंत्रयोग' या 'शक्तियोग' कहते हैं। इसके लिए लेखकने आनन्दमय-कोष-स्थित आत्माकी प्रधान शक्ति संकल्पको जाग्रत करनेकी आवश्यकता बतलायी है। पुस्तक बहुत ही उपयोगी और अध्यात्म-विषयके प्रेमियोंके लिए पथ-प्रदर्शिका है। मूल्य ॥)

मुद्रक—
बाबू सूर्य्यबली सिंह,

विषय-सूची

प्रकाशकीय वक्तव्य

वर्तमान युगमें संसारके समस्त सभ्य देशोंमें साम्यवादकी चर्चा चल रही है। संसारका शिक्षित समाज इस सिद्धान्तपर विशेष ध्यानके साथ मनन करने लगा है; परन्तु हिन्दीमें इस विषयपर कोई ऐसी उपयोगी पुस्तक अबतक नहीं प्रकाशित हुई थी जिसे पढ़कर लोग समाजवादका सिद्धान्त ठीक-ठीक समझ सकते। यही कारण है कि पाठकोंके सम्मुख आज यह सामयिक परमोपयोगी पुस्तक उपस्थित करते हुए मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है। देशमें जागृतिकी हवा कैसी बह रही है और देशोद्धारका शुभ समय कितना निकट है, इसका पता इस पुस्तकके पढ़नेसे पाठकोंको लग जायगा। इस पुस्तकमें देशके बड़े बड़े दिग्गज विद्वानोंने अपने अमूल्य सिद्धान्तोंकी पुष्टि करते हुए देशको स्वातन्त्र्य संग्राममें सफल बनाने तथा श्रमजीवियों और कृषकोंके दुःख-मोचनके उपाय स्पष्ट शब्दोंमें बतलाये हैं। आशा है कि हिन्दी-भाषा-भाषी जनता इस पुस्तकका प्रचार करनेमें भी पहलेकी भाँति पूर्ण सहायक होगी।

मेरी प्रार्थनासे द्रवित होकर भूतपूर्व शिक्षामन्त्री माननीय श्री सम्पूर्णानन्दने अपने नये-पुराने लेखों तथा उचित परामर्श-द्वारा इसके प्रकाशनमें जो सहायता दी है उसके लिये मैं आपके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। आचार्य नरेन्द्रदेवजीके लेखोंकी उच्चताको देखते हुए मेरी समझमें ही नहीं आ रहा है कि मैं उनके प्रति किन शब्दोंमें कृतज्ञता प्रकट करूँ। अन्तमें मैं उन अन्य कृपालु लेखकोंका भी परम कृतज्ञ हूँ जिनके अमूल्य लेखोंने इस पुस्तकको पूर्णाङ्ग बनाया है।

—प्रकाशक।

साम्यवाद का बिगुल

समाजवादी समाजकी कुछ विशेषताएँ

लेखक—श्री सम्पूर्णानन्द जी

यह एक विलक्षण-सी बात है कि इस सम्बन्धमें तो बहुतसे लेख और व्याख्यान देख सुन पड़ते हैं कि समाजवादियों-का कांग्रेससे क्या सम्बन्ध हो और समाजवादी कार्य्यक्रम क्या हो; परन्तु इस विषयपर बहुत कम विचार होता है कि आखिर समाजवादका मूलतत्व क्या है, समाजवादी समाजकी क्या विशेषताएँ होंगी। बिना इसको समझे समाजवादी कार्य्यक्रमको समझना कठिन ही नहीं असम्भव है और उसपर टीका-टिप्पणी करना हवासे लड़ना है।

आजकल उत्पादनके मुख्य साधन, जैसे मशीन, कारखाने, ज़मीन, कुछ व्यक्तियोंकी सम्पत्ति हैं जो स्वयं उत्पादनका काम नहीं करते। मैं जानता हूँ कि कुछ कृषक अपने खेतोंके मालिक हैं और कुछ लोग उद्योगधन्धोंसे जीविका चलाते हैं; पर आजकल-की सभ्यता और संस्कृति इनलोगोंपर निर्भर नहीं है। साधारण-तया किसान अपने खेतका स्वामी नहीं होता, वह लगान देकर

खेती करनेका अधिकार प्राप्त करता है। इसी प्रकार कारखानेके मजदूर मशीनोंके मालिक नहीं होते। यह तो साफ ही है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने भरण-पोषणसे अधिक पैदा कर लेता है। किसान यदि अधिक पैदा न करे तो लगान नहीं दे सकता। मजदूर यदि अधिक पैदा न करे तो कारखानेकी सारी आय मजदूरोंमें ही खत्म हो जाय। यह भरण-पोषणसे अधिक जो पैदा किया जाता है यही जमीनदारकी आमदनी और कारखाने-दारका मुनाफा है। यह इनलोगोंकी बेपरिश्रमकी, अनर्जित, आय है। इनकी सर्वथा यह कोशिश रहती है कि असली पैदा करनेवालोंके पास कमसे कम छोड़कर अपने हाथमें अधिकसे अधिक खींच लें। इसका परिणाम एक तो यह होता है कि इन दो वर्गोंमें बराबर तनातनी बनी रहती है, दूसरे थोड़ेसे आदमी जो स्वयं परिश्रम नहीं करते, सुखी, सम्पन्न, सुशिक्षित रहते हैं और समाजका बहुत बड़ा अंश जो परिश्रम करता है दुःखी, दरिद्र, अशिक्षित बना रहता है। यह बात सारे समाजके लिए अहितकर है।

समाजवादी समाजमें ऐसा न होगा। उत्पादनके साधन कुछ व्यक्तियोंके नहीं वरन् सारे समाजकी सम्पत्ति होंगे। सारा समाज जमीन, मशीन आदिका स्वामी होगा, उत्पादनका नियंत्रण करेगा अर्थात् अपने प्रतिनिधियोंद्वारा करायेगा और उत्पन्न वस्तुओंका यथोचित उपभोग करेगा। यह पहला मूल-तत्व है और पहला ही क्यों, सबसे बड़ा मूल-तत्व है। इसी प्रकार वितरण और विनियमके मुख्य साधन अर्थात् रेल, जहाज, बंक आदि भी समाजकी सम्पत्ति होंगे।

इससे एक और बात निकलती है। आजकल उत्पादन मुनाफ़े-के लिए होता है, उस समय उपयोगके लिये होगा। उदाहरण लीजिये; बम्बई, अहमदाबाद आदिमें कपड़ेकी बहुत-सी मिलें खुली हैं। क्यों ? यह बात तो है नहीं कि इनके मालिक समाजके निर्धनोंकी नग्नावस्थासे द्रवित हो उठे हैं प्रत्युत इसलिये कि इस व्यवसायसे रुपया मिलता है। कल यदि मुनाफा कम हो जाय तो कपड़ा कम बनावेंगे, चाहे लोग भले ही नंगे रहें। यदि कोई लड़ाई छिड़ जाय और बाहरसे कपड़ा आना बन्द हो जाय तो फौरन दाम बढ़ा देंगे, चाहे नंगोंकी जो दशा हो। यदि किसी और व्यवसायमें अधिक मुनाफा होगा तो रुपयेवाले उसीमें रुपया लगावेंगे, चाहे जरूरी चीजें रह जायँ। पर जब समाजके हाथमें उत्पादन आ जायगा तब यह बात जाती रहेगी। समाज अपने आपसे तो मुनाफा करेगा नहीं, न अपने आपको नंगा भूखा रक्खेगा। जिन जिन वस्तुओंकी जितनी जितनी आवश्यकता होगी वे उतनी उतनी पैदा की जायँगी और मुनाफेकी लालचमें उनका दाम घटता बढ़ता न रहेगा। सच बात तो यह है कि शुद्ध समाजवादी समाजमें दामका प्रश्न ही न आना चाहिये। प्रत्येक मनुष्य शुद्ध लोक-संग्रह भावसे शक्तिभर काम करे और अपनी आवश्यकताभर समाजके भंडारसे जो चाहे ले ले। "प्रत्येक व्यक्तिसे उसकी योग्यताके अनुसार, प्रत्येक व्यक्तिको उसकी आवश्यकताके अनुसार"—समाजवादका एक प्रधान सूत्र है। पर यह चरमावस्थाकी बात है। निकट भविष्यमें क्रय-विक्रय रहेगा; पर चूँकि समाज ही सामूहिक रूपसे पैदा करनेवाला और बेचनेवाला होगा और वैयक्तिक रूपसे खरीदनेवाला होगा

इसलिये जो कुछ नियंत्रण करेगा वह अपने हितके लिये ही करेगा। आज कोई खेती करता है, कोई कपड़े या जूते तैयार करता है, कोई रेल चलाता है, कोई स्कूल खोलता है, कोई थियेटर सिनेमा खोलता है। सभी समाजकी कोई न कोई आवश्यकता पूरीकर रहे हैं; पर अलग अलग, बिना दूसरी आवश्यकताओंकी ओर ध्यान दिये और केवल अपने लाभके लिये। उस समय समाज-को अपने भोजन, वस्त्र, शिक्षण, रक्षण, आमोद-प्रमोद सभीका प्रबन्ध करना होगा। वह अपनी शक्ति और आवश्यकता तौलकर सबका यथोचित प्रबन्ध करेगा।

एक और बात भी पहली बातसे, जिसे हमने मूल-तत्व कहा है, निकलती है। आज एक श्रेणी उनलोगोंकी है जो जमीनके मालिक हैं, दूसरी श्रेणी उनको है जो लगान देकर खेती करते हैं और अपने पास जो कुछ थोड़ा बहुत रख पायें उसे रखकर शेष जमीनदारकी नजर कर देते हैं। एक श्रेणी उनलोगोंकी है जो कल-कारखानोंके मालिक हैं, दूसरी श्रेणी मजदूरोंकी है जो अपने गाढ़े पसीनेकी कमाई मालिकोंके चरणोंमें अर्पित करनेके लिये ही बनाये गये हैं। जब सारा समाज उत्पादनके साधनोंका स्वामी हो जायगा तो न जमींदार रहेगा न मिल-मालिक। बड़ेसे बड़े अहलकारकी हैसियत भी श्रमिककी होगी। उस समय यह नित्यका वर्ग-संघर्ष समाप्त हो जायगा; क्योंकि लड़नेवाली सेनाएँ ही मिट जायँगी। केवल एक वर्ग—परिश्रम करनेवालोंका—रह जायगा, चाहे अपनी योग्यता और समाजकी आवश्यकताके अनुसार परिश्रम खेतमें किया जाय या कारखानेमें, दफ्तरमें किया जाय या पाठशालामें। यहाँ भी एक बात ध्यान देनेकी है।

चरमावस्थामें तो उसी सिद्धान्तके अनुसार काम होना चाहिये; सब अपने योग्यतानुसार काम करें और आवश्यकतानुसार लें। इसमें तो पारिश्रमिक, वेतन, पुरस्कारके लिये कोई स्थान ही नहीं है। पर निकट भविष्यमें तो पारिश्रमिकका नियम रखना पड़ेगा और भिन्न भिन्न व्यक्तियोंके पारिश्रमिकमें भेद भी होगा। हाँ, एक बात अवश्य है। चूँकि सभी लोगोंकी कुछ आवश्यकताएँ—जैसे खाना कपड़ा आदि—प्रायः एक सी ही हैं इसलिये पारिश्रमिकों-में आज जैसा भेद, जब कि वाइसराय २५,०००) मासिक पाकर भी त्यागी कहलाता है और चपरासीके लिये १२) भी बहुत समझा जाता है, न होगा और किसीको भी एक ऐसी निर्दिष्ट रकमसे कम न मिलेगा जो सुचारु भरण-पोषणके लिये पर्य्याप्त हो। इसलिये वर्गोंके टूटनेपर धनिक निर्धन श्रेणियोंके पुनः बन जानेकी कम ही सम्भावना है।

लोग प्रायः दो प्रश्न बहुत पूछा करते हैं; १—क्या समाजवाद सबको बराबर कर देना चाहता है? २—समाजवादी समाजमें निजी सम्पत्ति रहेगी या नहीं?

पहले प्रश्नका उत्तर यदि एक शब्दमें देना हो तो मैं कहूँगा कि 'नहीं'। समाजवाद इस विषयमें प्रकृतिसे लड़ना नहीं चाहता। समाजवादी समाजकी चरमावस्थामें भी सम्भवतः कोई जन्मनादुर्बल और कोई बलवान, कोई प्रतिभाशाली और कोई दुर्बुद्धि पैदा होगा। काम करनेकी समता सबकी पृथक् पृथक् होगी। आवश्यकताएँ भी पृथक् पृथक् होंगी। यह भी मैंने बतलाया है कि बीचके कालमें पारिश्रमिकतकमें भेद होगा। पर हाँ, समाजवादी सबको बराबर अवसर देना चाहते हैं। आज

किसी जाति, वर्ग या कुल-विशेषमें जन्म लेनेसे ही किसीको उन्नति करनेका बहुत-सा अवसर मिल जाता है और किसीका रास्ता रुक जाता है। ऐसा न होना चाहिये। सबको मौका बराबर मिले, जो आगे बढ़ सके वह बढ़ जाय। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि आगे बढ़नेका वास्तविक अर्थ उस समय होगा समाजकी अधिक सेवा करना।

दूसरे प्रश्नका उत्तर है—'हां'। चरमावस्थामें तो सम्पत्तिका कोई उपयोग ही नहीं होगा पर बीचकी अवस्थामें निजी सम्पत्ति रहेगी। उसपर दो नियंत्रण रहेंगे। इसमेंसे एक तो किसी न किसी रूपमें आज भी है अर्थात् परिसीमन। आजकल राज आमदनीपर इनकम टैक्स और बड़ी आमदनियोंपर सूपर-टैक्स लगता है। बहुत जगह मरनेके बाद उत्तराधिकारियोंको एक निर्दिष्ट अंश राजकोषमें देना पड़ता है। समाजवादी समाजमें सम्भवतः बन्धन और कड़े होंगे ताकि बड़ी सम्पत्तियाँ उत्तरा-धिकारियोंके हाथमें न आवें। पर सबसे बड़ा और मौलिक नियंत्रण यह होगा कि सम्पत्ति पूँजी न बनने पावेगी। सम्पत्ति बुरी नहीं होती, पूँजी बुरी होती है क्योंकि पूँजीके द्वारा ही उत्पादनके साधनोंपर कब्जा करके मनुष्य मनुष्यको आर्थिक दास बनाता है। यदि रुपया हो पर वह किसी व्यवसायमें न लगाया जा सके, अर्थात् पूँजी बनकर अपनी वृद्धि न कर सके, तो वह विशेष हानिकर नहीं हो सकता। समाजवादी समाजमें सब व्यवसाय समाजके हाथमें होंगे, निजी व्यवसायमें पूँजी लगानेकी अनुमति ही न होगी। घर, कपड़ा, पुस्तकें, मोटर, यह व्यवहारकी सम्पत्ति रह सकती है। यह प्रायः निश्चित है

कि ऐसी दशामें बहुत-सा धन संग्रह करनेका लोभ भी किसीको न होगा। धन तो इसीलिये इकट्ठा किया जाता है कि पूँजी बनकर अपनी सन्तति बढ़ावे।

एक प्रश्न कभी कभी और किया जाता है। जब धन संग्रह करनेका अवसर ही न रहेगा तो लोगोंको काम करनेके लिए प्रोत्साहन क्या होगा? जो लोग ऐसा प्रश्न करते हैं वे मनुष्यके स्वभावकी महत्तासे अनभिज्ञ हैं। कुसंस्कार और कुशिक्षाने मनुष्यको भले ही लोभी और स्वार्थी बना दिया हो पर वह लोकसंग्रह-भावसे काम करनेके योग्य है। भूत-सेवा उसके लिये कम आकर्षक लक्ष्य नहीं है। बड़े बड़े कवियोंकी कृतियाँ केवल स्वान्तः सुखाय लिखी गयी हैं। धर्म्मप्रणेता, साधु, वैज्ञानिक, लक्ष्मीका बराबर तिरस्कार करते रहे हैं। अच्छे आदमियोंको तो कर्तव्य-बुद्धि, निष्काम-बुद्धिसे ही काम करना अच्छा लगता है। यह भी नहीं है कि यह असाधारण व्यक्तियोंकी बात हो। अपने आदर्शोंके नामपर हजारोंने जेलोंके संकट झेले हैं, सम्पत्ति बरबाद कर दी है, प्राण दे दिये हैं। अतः समाज-सेवा-भावमें प्रोत्साहन देनेकी पर्याप्त शक्ति भरी पड़ी है।

एक बातकी ओर और संकेत करूँगा। आज सारी पृथ्वी साम्राज्यशाहीके आक्रमणसे जर्जर हो रही है। उत्पादन होता है मुनाफेके लिये और कुछ व्यक्तियोंके हाथमें व्यवसाय हैं। जिन देशोंसे कच्चा माल लेनेमें मुनाफा हो, जिनमें बना माल बेचनेमें मुनाफा हो, जिनके व्यवसायोंमें अपना रुपया लगानेमें मुनाफा हो उनपर किसी न किसी प्रकार नियन्त्रण करना ही साम्राज्यशाही है। यदि उत्पादन उपयोगके लिये हो और प्रत्येक देशमें

समाजके हाथमें उत्पादनके साधन हों तो यह होड़ बन्द हो जाय और अन्तरराष्ट्रीय भ्रातृभावकी स्थापना हो।

इस बहुत ही संक्षिप्त दिग्दर्शनसे इस बातका कुछ अनुमान हो सकता है कि समाजवादी कैसा समाज स्थापित करना चाहते हैं। यदि आजकलके विषमतामय वातावरणको, जो सौहार्द्र, विश्वास, धैर्य—थोड़ेमें मनुष्यत्वको, कुण्ठित कर देता है, दूर करता है तो सिवाय समाजवादके और कोई मार्ग देख नहीं पड़ता। पर समाजवादका मार्ग क्रान्तिमय है। सुधारोंके द्वारा हम समाजवादी समाजको स्थापित नहीं कर सकते।

कांग्रेस समाजवादी दल

(लेखक—श्री सम्पूर्णानन्द जी)

इस परिस्थितिमें कांग्रेस-समाजवादी दलका उदय होना देशके लिये बड़ी ही श्रेयस्कर बात है। इस दलके सदस्य भी कांग्रेसके सदस्य हैं। उनमेंसे बहुतोंने पिछले पन्द्रह वर्षोंमें बराबर कांग्रेसका साथ दिया है और दूसरे लोगोंके बराबर ही सरकारके हाथों देश-सेवाका पुरस्कार पाया है। यह लोग अब भी कांग्रेसके वैसे ही भक्त और उसकी मर्यादा और गौरव-

की रक्षा करनेके लिये वैसे ही तत्पर हैं। आवश्यकताके समय यह भी कांग्रेसकी पूर्ववत् ही सेवा करेंगे। और यदि वह देशके लिये फिर भी युद्ध छेड़ेगी तो उसमें दूसरोंके साथ कन्धेसे कन्धा लगाकर बराबर लड़ेंगे। इस सम्बन्धमें किसीको सन्देह नहीं होना चाहिये।

यहाँ समाजवादकी लम्बी व्याख्या करनेकी जरूरत नहीं है; पर दो एक बातोंक दिग्दर्शन कराना आवश्यक है। समाजवादी न केवल विदेशी सरकारको दूर करना चाहता है, वरन् समाजके आर्थिक स्वरूपमें क्रान्ति करना चाहता है। आज एक तरफ वह लोग हैं जिनके पास करोड़ों रुपये जमा हैं, पर यह रुपये कहाँसे आते हैं? रुपये क्या आकाशसे बरसते हैं? मजदूर एँड़ी-चोटीका पसीना एक करता है पर बीमार हुआ, बूढ़ा हुआ तो निकाला गया। चाहे मुनाफा कुछ हो, पर उसकी मजदूरी वही रहती है। अभी आपने अहमदाबादका झगड़ा सुना होगा। पहले सरकारका कानून ऐसा था कि कपड़े तथा अन्य कारखानोंमें काम करनेवालोंसे ६० घण्टा हफ़्ता काम लिया जा सकता था। अन्य सभ्य देशोंमें प्रायः ४८ घण्टेका नियम है। अब शर्माते शर्माते सरकारने यहाँ यह कायदा बनाया है कि ५४ घण्टेसे ज्यादा काम लेना मजदूरोंके साथ हैवानो बर्ताव करना है। सारे भारतके लिये यही कानून लागू होगा। इसीलिये किसी पूँजीवालेके मुनाफेमें घाटा न होगा पर अहमदाबादके मिल-मालिक मजदूरी घटाते जा रहे हैं। यही दशा सब जगह है। आजकल जमींदार क्या करता है? अगर जमींदार न रहे तो किसीका क्या बिगड़ जावेगा! पर वह बैठा बैठा मुफ्तमें किसानकी गाढ़ी कमाईमें हिस्सा लेता है। खुली लगान तो लेता ही है, छिपी लगान भी—

हर वक्त—लेता है, हरी, बेगारी, नजराना, यह सब लेता है। यह सब खुली लूट है। एक ओर वह लोग हैं जिनके महलोंमें एक कुटुम्ब क्या, सौ कुटुम्ब समा जावें, दूसरी ओर वह लोग हैं जो टूटी झोपड़ियोंके या सड़ककी पटरियोंपर माघ-पूसकी रात बिता देते हैं। एक ओर वह लोग हैं जिनके पास इतना रुपया है कि वह उसे खर्च करना नहीं जानते, दूसरी ओर वह लोग हैं जो दूसरे-तीसरे वक्त आधा पेट अन्न पाते हैं और एक दूसरेकी देह-से सिमटकर जाड़ा काटते हैं। किसीके लड़केको, चाहे वह जन्म-से ही मूर्ख हो, पढ़ानेमें हजारों रुपये खर्च होते हैं, किसीका तेज और बुद्धिमान लड़का वजीफे और फीसके लिये इधर उधर दौड़-कर, हाय करके बैठ रहता है। अमीरके लिये धर्म दूसरा है, कानून दूसरा है, गरीबके लिये धर्म और कानूनकी दूसरी ही सूरत हो जाती है। समाजवाद इस बातको बदलना चाहता है। उसका सिद्धान्त है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी शक्ति और योग्यता-भर परिश्रम करे, कोई बैठा बैठा हरामखोरी न करे, और सबको जरूरतके अनुसार मिले। समाजवादी जमींदारी प्रथाको उठा देगा, कल—कारखानोंको मिल-मालिकोंके हाथसे लेकर राष्ट्रकी सम्पत्ति बना देगा, ताकि मिलोंके, बंकोंके, रेलवे लाइनोंके मुनाफे-में सबका हिस्सा हो। समाजवादी गरीब अमीरका भेद मिटाना चाहता है। वह आपसे कहता है कि हाथपर हाथ रखकर कर्म और ईश्वरके नामपर मत रोइये। पुरुषार्थसे काम लीजिये। समाजकी यह अवस्था जिसमें वायसरायको २५०००) मासिक मिले और एक चपरासी, एक पुलिस कांस्टेबुलको १२) १३) मासिक मिले, शर्मनाक है। वायसरायके भी एक पत्नी होती है,

चपरासीके भी। बच्चे शायद चपरासीके कुछ ज्यादा ही होंगे। मेहनत भी वह कम नहीं करता। हम मानते हैं कि सबको जरूरत एकसी नहीं होती, पर दो आदमीकी जरूरतोंमें २५०००) और १०) का फर्क नहीं हो सकता। समाजवादी चाहते हैं कि हम जिस स्वराज्यके लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर रहे हैं वह भारतकी इस कोटानुकोटि जनताका स्वराज्य हो जिसमें यह लोग आदमीकी तरह रह सकें।

कांग्रेस और गरीब

इसके उत्तरमें कुछ लोग यह कहते हैं कि कांग्रेस तो खुद ही गरीबोंका स्वराज्य चाहती है। महात्माजी तथा अन्य नेताओंने बार-बार ऐसा कहा है कि हम मजदूरों और कृषकोंका स्वराज्य चाहते हैं। यदि हमारे बड़े नेताओंकी वस्तुतः यही इच्छा है तो वे हमको आशीर्वाद देंगे और हमको जल्दी सफलता होगी; पर सच तो यह है कि इस समय कांग्रेसपर रुपयेवालोंका बड़ा जोर है। वह जब चाहते हैं तब आन्दोलन छिड़ जाता है, जब चाहते हैं तब रुक जाता है। उनके कुकर्मोंको जानते हुए भी कांग्रेस उनकी निन्दा नहीं कर सकती। स्वराज्यके नामपर लोगोंको लड़ानेकी कोशिश तो की जाती है पर यह साफ साफ नहीं बतलाया जाता कि स्वराज्य हो जानेपर इन गरीबोंको क्या मिलेगा। आजतक इनको अंग्रेज और हिन्दुस्तानी मिलकर चूसेंगे। पर, इस स्वराज्यसे बेचारे गरीबको क्या सुख मिलेगा? वह उसके लिये क्यों मरे कटे! हम समाजवादी स्पष्ट रूपसे बतला देते हैं कि स्वराज्यमें क्या होगा, मिल-मालिकों, पूँजी-पतियों, सरकारी अहलकारों और जमीन्दारोंका बल किस प्रकार खत्म हो जावेगा। जो आदमी

एक अदना चपरासी, एक चार पैसेवाले महाजन, एक छोटेसे जमीन्दारके सामने सरकार, हुजूर, अन्नदाता, मालिक कहकर नाक रगड़ता है, हम उसको आदमी बनाना चाहते हैं और इसकी तय्यारी भी अभीसे करते हैं। हम मजदूर और किसानोंसे कहते हैं कि संघटित हो जाओ और मजदूर-सभा और किसान सभा बनाओ। संघमें बड़ी शक्ति है। यदि अपने चूसने और सतानेवालोंसे अकेले-अकेले बात करोगे तो हारते ही रहोगे पर; यदि संघटित होकर, मिलकर, बात करोगे तो सब न हों पर, अपनी कुछ माँगें जरूर उनसे पूरी करा लोगे। पूरा सुख तो स्वराज्यके बिना नहीं ही मिल सकता।

साम्यवाद की ओर

(लेखक—श्रीयुत श्रीप्रकाश जी)
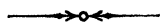
अब यह मुमकिन नहीं है कि हम इस हालतको बरदाश्त कर सकें कि एक तरफ जरूरतसे ज्यादा धन हो, और दूसरी तरफ बेहद गरीबी हो; चन्द लोगोंके पास बेहद ताकत हो, और बाकी लोग गुलामीमें पड़े हों। हम साफ साफ यह चाहते हैं कि दुनियाँमें काम और दामका मुनासिब बँटवारा हो, समाजका सङ्गठन आजादी और मुहब्बतके उसूलपर किया जाय।

सचमुच हम सब ऐसे ही समाजको कायम करनेकी कोशिशमें लगे हैं और कांग्रेस समाजवादी दलका कायम होना, और उसका कांग्रेसमें पहले ही वर्ष इतना जबरदस्त असर पैदा कर लेना, इस बातका सुबूत है कि हम किस तरफ जाना चाहते हैं। जो हमारे लाखों गरीब भाई और बहिन आज अपना सर्वस्व कांग्रेसके नाम-पर निछावर कर रहे हैं, वे ऐसा इस वास्ते नहीं कर रहे हैं कि मुट्ठीभर आदमियोंके गैर-जिम्मेदार हाथोंमें दुनियाँकी सारी हुकूमत रहे और करोड़ों उनके गुलाम बने रहें। उनलोगोंको भी याद रखना चाहिये जो आज अपने भाइयोंसे ज्यादा अच्छी हालतमें हैं, और जो सारी इज्जत और हूकूमत, सारी दौलत और आराम अपने ही हाथोंमें रखे हुए हैं; गो वे उनको छोड़ना नहीं चाहते, पर वास्तवमें जिन चीजोंकी उन्हें लालच है वे ही खतरे-में पड़ जाती हैं, अगर उनके चारों तरफके रहनेवाले गलाज़त और गरीबीमें पड़े हुए हों, और जिस्मानी आसाइश और दिमागी इल्मसे जो रोशनी मिलती है उससे वे महरूम हों। उसका असर उसके ऊपर पड़ता ही है और अगर पड़ोसी दुखी और गन्दा है तो बीमारी और मौत उनकी दीवारोंके भीतर भी आ ही जायगी, चाहे इन्हें दूर रखनेके लिये कितनी ही कोशिश क्यों न की जाय।

गवर्नमेन्ट और जमींदार

हर एक गवर्नमेंट जरूर ही यह पसन्द करती है कि जितना वह टिकस लगावे प्रजा बहुत खुशीके साथ उसे दे दे। जिस बात-में जितनी वह मदद माँगे उसे मिल जाय; वह जो कुछ चाहे करे, कोई कुछ न बोले। बीमारीसे, भूखसे, गरीबीसे चाहे कितनी

ही तकलीफ हो, प्रजा चुपचाप बरदाश्त करे और जरूरत पड़े तो मर भी जाय, पर जरा भी शिकायत न करे। क्या हम और आप ऐसी स्थितिसे खुश हो सकते हैं? क्या हम उन अपने भाइयोंको ऐसी लाचारी और विवशताकी हालतमें छोड़ सकते हैं जिनकी मेहनत और कुरबानीकी वजहसे आज दुनियाँभरको खाना और कपड़ा मिलता है, और हमें वे आसाइशें मिली हैं जो सभ्यता-की सूचक समझी जाती हैं? पर भड़कनेवालोंसे हमें जरूर शिकायत है। जमींदारोंकी ही एक मिसाल ले लीजिए! हमसे भड़ककर भड़कानेवालोंकी गोदमें जानेसे, कर्ज लेने न लेनेके नये कानूनोंके आडम्बरसे उन्हें क्या फायदा मिल रहा है या मिल सकता है? सम्भव है कि इसका यही नतीजा हो कि जमींदारों और महाजनोंमें परस्पर वैमनस्य ही पैदा हो, जिससे दोनोंका ही नुकसान हो और गवर्नमेंटको जमींदारी और महाजनी साथ ही साथ खूब मजबूत होती जाय। सारा आक्रमण एकतर्फा ग़ैर-सरकारी पेशोंके ही विरुद्ध होता है। गवर्नमेंट इसको तो मान लेती है कि जमींदार और महाजन लोगोंका खून चूसते हैं, और बिना कुछ किये धन कमाते हैं। लेकिन सारे सरकारी मुलाजिम मुल्कके बड़े आत्मत्यागी लोकोपकारी सेवक समझे जाते हैं जो लगातार मेहनत करते हैं और उसके बदलेमें कुछ नहीं पाते, यद्यपि वास्तवमें नामके वास्ते ही उनमेंसे कितनोंका काम रहता है, और जब बड़ीसे बड़ी भी गलती कर बैठते हैं तो उसका बुरा नतीजा ग़ैरसरकारी आदमियोंको ही भुगतना पड़ता है, और कितनोंको इतनी बड़ी बड़ी तनख्वाहें मिलती हैं और उनका इतना बड़ा पद समझा जाता है, कि अपने जिलोंके

अधिकतम धनिकों और विशेषाधिकार प्राप्त किये हुए लोगोंमें उनकी गिनती है।

मैं तो यही नहीं समझ पा रहा हूँ कि इस समयकी अवस्थामें जमींदारी प्रथाको बनाये रखनेमें जमींदारोंका ही क्या फायदा है ?

किसीसे दुश्मनी नहीं

हम किसी गरोह या किसी कौमसे नहीं लड़ रहे हैं। हम जिन्दगीके एक खराब तरीकेसे लड़ रहे हैं। हम किसी व्यक्ति या किसी गरोहके दुश्मन नहीं हैं, किसीका अहित नहीं चाहते, सबकी उचित भलाई और सेवा करनेकी कोशिश कर रहे हैं।

साम्यवादमें ही सबका सच्चा स्वार्थ है

[लेखक—श्री श्रीप्रकाश]

संसारमें सभी प्राणी अपने हितकी रक्षाके लिये यथाशक्ति और यथाबुद्धि प्रयत्न करते हैं। मनुष्य भी ऐसा ही करता है। वह एकाकी नहीं रह सकता। वह छोटेसे कुल या गरोहसे भी सन्तुष्ट नहीं होता। उसने बड़ा वृहत् संसारव्यापी संघटन अपने समाजके लिये करना चाहा है। वह इस संघटन-

को टूटने नहीं देना चाहता। उसकी इच्छा है कि यह दिन प्रति-दिन बलवान होता जाय। जितने कायदे कानून बनते हैं सब इसी वास्ते बनते हैं कि समाजका संघटन स्थायी रहे। विचारवान लोग नये नये प्रस्ताव इस उद्देश्यसे किया करते हैं कि उसकी त्रुटियाँ दूर हों और उसे स्थायी रखनेमें सहायता मिले। दोषयुक्त कोई भी वस्तु बहुत कालतक नहीं रह सकती। दोष दूर करते रहना सबका प्रधान कर्त्तव्य है अगर वह अमरत्वको प्राप्त करना चाहता है। व्यक्तिगत अमरत्वकी अभिलाषा अनुभवसे असम्भव सिद्ध हुई। समाजके ही अमरत्वसे व्यक्तिको सन्तोष करना होगा। जब हम देखते हैं कि समाज-संघटन दोषयुक्त है, उसका मूल सिद्धान्त ठीक नहीं है, तो हमें भय होता है कि समाज-का ही कहीं लोप न हो जाय। गलत या सही इस समयके समाज व्यूहनको कितने ही लोग बहुत ही भयावह मान रहे हैं। उनको आशंका है कि यह बहुत दिनतक टिक नहीं सकता। उसमें वे इतने दोष देख रहे हैं कि उन्हें डर है कि परस्परके झगड़ोंके कारण समाज टूटकर तहस नहस हो जायगा और जिसको प्राप्त करनेमें सहस्रों वर्षका कठोर परिश्रम लगा है वह सर्वथा नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। मनुष्य समाजको सुचारु रूपसे संघटित रखना जिससे मनुष्यका दिन प्रतिदिन अधिकाधिक विकास होता जाय, यह सबकी ही अभिलाषा है। इसकी पूर्तिके लिये और वर्तमान समयकी स्थितिसे उत्पन्न हुई जो शंकाएँ हैं उन्हें दूर करनेके लिये साम्यवादकी विचार-धारा जोरोंसे चारो ओर फैल रही है।

साम्यवादके नामसे चौंकनेकी कोई जरूरत नहीं है। हम

साम्यवादकी यहाँ परिभाषा नहीं कर सकते, क्योंकि नाना प्रकारके व्यक्ति अपनेको साम्यवादी कहते हैं और नाना प्रकारकी काररवाइयाँ साम्यवादके अनुकूल बतलायी जाती हैं। साम्यवादके सम्बन्धमें बात करनेमें एक और कठिनाई है। कितने ही लोगोंका ख्याल है कि साम्यवादका अर्थ गरीबी है और साम्यवादीका गरीब होना आवश्यक है। (यहाँ 'गरीब' उसी अर्थमें प्रयोग हुआ है जिसमें साधारणतः बोलचालकी भाषामें वह प्रयोग किया जाता है, अर्थात् ऐसा पुरुष जो अन्न-वस्त्रके कष्टमें हो) यदि कोई ऐसा पुरुष अपनेको साम्यवादी कहे जो साधारणतः खाने-पीनेसे खुश हो तो वह मक्कार समझा जाता है। और यदि कोई इत्तिफाकसे गरीब आदमी अपनेको साम्यवादी बतलावे तो उसका यह कहकर मजाक उड़ाया जाता है कि अवश्य ही वह मुफ्तमें दूसरोंका धन चाहता है। मैं साम्यवादकी गूढ़ तहमें न घुसना चाहता हूँ और न घुसनेकी योग्यता रखता हूँ। उस सम्बन्धमें भिन्न भिन्न विचारोंपर विद्वत्तापूर्ण विवेचना भी मैं नहीं कर रहा हूँ। मैं तो राह चलतोंके लिए लिख रहा हूँ, उनके ही भ्रमोंको दूर करनेका यत्न कर रहा हूँ और यह दिखलाना चाहता हूँ कि साम्यवादमें ही उनके हितोंकी वास्तविक रक्षा होती है। उनका जो यह ख्याल है कि साम्यवादमें संसारके सारे धनका सब मनुष्योंमें बराबर बटवारा कर दिया जायगा वह गलत है। इसीसे वे सब भ्रम होते हैं जिनका निर्देश ऊपर किया गया है और व्यक्तिगत साम्यवादीकी आर्थिक स्थितिको देखकर उसकी आलोचना की जाती है। मोटे तौरसे साम्यवाद—वास्तवमें इसे समाजवाद कहना चाहिये पर साम्यवाद शब्दकी ही इतनी

प्राणप्रतिष्ठा हो गयी है कि इसको बदलना सम्भव नहीं है— मनुष्य समाजके संघटनके सम्बन्धकी एक विचार शैली है जिसका मूल सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक व्यक्तिको अपनी शक्तिभर कार्य करना चाहिये और उसकी आवश्यकताभर उसे मिलना चाहिये। साम्यवादीका ख्याल है कि यदि इस सिद्धान्तपर काम हो तो समाजका संघटन सुन्दर, सुदृढ़ और सदा स्थायी हो सकता है।

इस सिद्धान्तमें पाठक देखेंगे कि बराबरीपर जोर नहीं दिया जाता, क्योंकि यह मानी हुई बात है कि सबलोग बराबर नहीं हैं साथ ही यदि पाँचों उँगलियाँ बराबर नहीं हैं तो एक उँगली और दूसरी उँगलीमें गज दो गजकी लम्बाई चौड़ाईका फर्क भी नहीं है। सबको ही अपने अपने स्थानपर अपनी अपनी शक्तिके अनुसार काम करना पड़ता है और सबकी ही उचित आवश्यकताएँ पूरी की जाती हैं। इस समय मनुष्य-समाजके विकासने एक गलत रूप धारण कर लिया है जिसके कारण मनुष्य और मनुष्यमें बहुत बड़ा भेद हो गया है। धन बहुत थोड़ेसे हाथोंमें मर्यादित हो गया है। धनको ही सारी शक्ति और सारा सम्मान मिल गया है। धन ही सब कुछ खरीद सकता है और धनद्वारा खरीदनेकी चीजें भी बहुत सी तैयार हो गयी हैं। ऐसी अवस्थामें चन्द लोगोंके हाथमें बाकी सब भाइयोंके ऊपर अनन्याधिकार आ गया है। प्रकृति-दोषसे अधिकारका सदुपयोग कम होता है और दुरुपयोग ही अधिक होता है। भीषण स्थिति पैदा हो गयी है। भेदभाव सबसे बड़ा दोष है, यही ईर्ष्या, द्वेषका माता-पिता है। काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद, मत्सर छहों रिपुओंका बीज इसमें है, जो मनुष्यके व्यक्तिगत और सामाजिक जीवनको

नष्ट-भ्रष्ट कर सकते हैं और करते रहते हैं। भेद ही मिटानेसे ये दोष मिट सकते हैं। साम्यवाद इस घातक भेदको मिटाना चाहता है। वह सबको बराबर नहीं मानता। इसो वास्ते कहता है, अपनी शक्तिभर सबको काम करना चाहिये। इसका मतलब ही है कि भिन्न भिन्न लोगोंकी शक्तिमें अन्तर है। और सबलोग एक ही प्रकारका और एक ही परिमाणका काम नहीं कर सकते। वह सबको दाम भी बराबर नहीं देता। वह सबको कहता है कि अपने आवश्यकतानुसार ले लो। भिन्न भिन्न लोगोंकी आवश्यकताएँ भिन्न भिन्न होती हैं। छोटा बच्चा कुछ काम नहीं करता, खाता बहुत है। दिक भी बहुत करता है। वयस्क काम बहुत कर सकते हैं, खाना भी कम खाते हैं। साम्यवाद कहता है अपनी शक्ति-भर काम करो। अपने आवश्यकतानुसार ले लो। यह बच्चों, वयस्कों और वृद्धों सबको पूरी पूरी और उपयुक्त व्यवस्था करता है।

लोग हँसकर कहेंगे—संसारके सब संकटोंको मिटानेका क्या ही सुन्दर और सरल नुस्खा है। साथ ही वे गम्भीर भावसे पूछेंगे—क्या इसके लिखनेवालोंने इसपर भो ध्यान दिया है कि मनुष्य किन वासनाओंसे प्रेरित होकर काम करता है? उन वासनाओंको तृप्तिके लिये, कार्य करनेवालेके हृदयके आप्या-यनके लिये भी कोई उपाय सोचा गया है। आधुनिक संसारमें धनका ऐसा प्रबल प्रताप है कि साधारणत: लोगोंने यह सोच रखा है कि धनकी लालच ही सब कामोंको कराती है और अगर यह जीवसे निकाल दिया जाय तो कोई भी कुछ काम न करेगा। मनुष्य अपने कामका अपनी आवश्यकतासे अधिक दाम चाहता है और जैसे जैसे अधिक दाम मिलता जाता है वैसे

वैसे उसकी बुद्धिकी स्फूर्ति बढ़ती जाती है और वह नये आविष्कारोंसे समाजकी उन्नतिमें सहायता पहुँचाता है। इस कारण यथाशक्ति काम और यथावश्यकता दामका सिद्धान्त नहीं चल सकता। पर यदि विचारकर देखा जाय तो इन शङ्काओंको करनेवाले भी इस बातका अवश्य अनुभव करेंगे कि शायद ही कोई काम जो वास्तवमें लोकहितका हुआ होगा, धनकी लालचसे किया गया है। सुन्दर साहित्य, श्रेष्ठ कला, वैज्ञानिक आविष्कार सब प्रेमकी प्रेरणासे हुए हैं। धनकी लालचसे इन्हें किसीने नहीं किया। अधिकतर तो लोक-हितैषी दरिद्र रहे हैं और इनमेंसे जो धनी पैदा भी हुए वे अपनेको स्वयं दरिद्र बनाकर ही लोकहित कर पाये। धनकी लालचसे जो काम हुए हैं वे तो समाजके घातक रहे हैं, समाजके सहायक नहीं। धनकी लालचसे व्यापारी जुआचोरी, कानूनी कलाबाजी, निरीह और निर्दोष स्त्री-पुरुषोंपर पाशविक आघात ही हुआ है। इसमें समाजकी उन्नति कहाँ?

साम्यवाद इस अत्याचारको बन्द करता है और ऐसे कामको ही दुनियाँसे हटा देता है जिसमें धनकी लालचसे मनुष्य मनुष्यको सताता है। वह इस दयनीय दृश्यको भी बन्द करना चाहता है जिससे उचित भोजन, वस्त्र, गृहसे वंचित लोग अपना जीवन कला, साहित्य या विज्ञानकी सेवामें व्यतीत कर रहे हैं। वह इस वीभत्सताको भी दूर करना चाहता है कि धनके कारण किसीको बहुत अधिक मिले और अधिकतर लोगोंको गरीबीके कारण कुछ न मिले। कुछको आरामसे ही फुर्सत न मिले और कितने ही काममें इतने पिसे रहें कि उन्हें भोजन और निद्राके

लिए भी पूरा अवसर न मिले। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि वर्तमान वृहत् भेदभाव बना रहा तो मनुष्य समाजको रोष और असन्तोष, द्वेष और घृणासे उत्पन्न ऐसी हिंसामय क्रांतिका सामना करना पड़ेगा जिसमें सम्भव है कि वह पूरे तौरसे नष्ट हो जाय। साम्यवादी चाहते हैं कि मनुष्यके विचारसे ही क्रान्ति हो जाय, जिससे कि तज्जनित समाज-व्यूहन यथासम्भव कम कष्ट-के साथ उचित प्रकारसे हो जाय। यह बात भी स्मरण रखना चाहिये कि धनकी लालच लोगोंमें इस कारण भी होती है कि आजकल उसीमें सम्मान और उसीमें शक्ति है। और उसमें आमोद-प्रमोदके भी सब साधन हैं। यदि सार्वजनिक रूपसे आमोद-प्रमोदकी आयोजना हो जाय, यदि बिना धनके सम्मान और शक्ति मिल सके, तो उसकी लालसा भी कम हो जाय। साम्यवादी इसका प्रबन्ध करना चाहता है। वह विद्वानोंको आदर-सत्कार, राज्य-भार ढोनेवालोंको शक्ति अधिकार देना चाहता है, पर वह व्यर्थके ऐश-आराम, निरर्थक धनराशि इन्हें नहीं दे सकता। वह बेकारोंकी सेना, चाहे वे धनी हों चाहे वे दरिद्र हों, नहीं पाल सकता। वह सबको उपयुक्त शिक्षा देता है, सबसे उपयुक्त काम लेता है। सबको उपयुक्त दाम देता है और सबके आरामकी व्यवस्था करता है। काम, दाम और आराम-का समुचित समन्वय ही साम्यवाद है। इसीमें सबको अपना जौहर दिखलानेका मौका मिल सकता है। इसीसे मनुष्य-समाज चिरकालके लिए सुसङ्गठित रह सकता है।

इन साधारण लोगोंको, जो हर प्रकारकी अनावश्यक राज शक्तियोंसे डराये धमकाये हुए हैं, जो प्रतिदिनके भयंकर परिश्रम-

से दबे हुए हैं, जो अपने पेशोंकी अवनतिसे चिन्तित हैं, जो अपनी सन्ततिकी शिक्षा, विवाह, जीविका आदि समस्याओंको हल करनेमें विह्वल और व्याकुल हैं, उनके लिये साम्यवादके सिद्धान्तपर स्थापित समाज-व्यूहनसे बढ़कर कोई आश्रय नहीं है। हम काम चाहते हैं, हम मेहनतसे भागते नहीं, हम आवश्यकतासे अधिक भी लालसा नहीं रखते। हम पूछते हैं कि हमारे लिये व्यवस्था क्यों नहीं हो रही है। वर्तमान पूँजीवादी समाज हमारा सन्तोष नहीं कर सकता क्योंकि उसे हमारी आवश्यकता नहीं है। साम्यवादकी ही शरण आजकल हमारे जो सम्मानित अधिकार प्राप्त धनीलोग हैं उनकी भी वास्तविक स्वार्थसिद्धि साम्यवादमें ही है। उनके पास हर प्रकारका भोजनका प्रबन्ध होते हुए भी उनको बेकारी सताती है। उनसे समय काटा नहीं जाता। काल कालकी तरह उन्हें ग्रसता है। काम करनेसे ही समय कटता है। काममें जो आनन्द है उससे वे वञ्चित हैं। वे नाना प्रकारकी आधियों और व्याधियोंसे पीड़ित रहते हैं जिनसे न मुसाहिब न वैद्य उन्हें बचा सकते हैं। उनको चोरों, शत्रुओं, रिश्तेदारों, नौकरों आदिसे सदा भय लगा रहता है। हजार यत्न करनेपर भी वे संसारकी छूतसे बच नहीं सकते और उनका घर चाहे उनके धनके कारण कितना ही स्वच्छ और सुन्दर क्यों न हो, बगलके झोपड़ोंमें पैदा हुई गरीबीकी बीमारियाँ, वायु और जल, धोबी और हलवाईके द्वारा उनके पास अवश्य पहुँचकर अनर्थ करती हैं। उनका भी स्वार्थ इसीमें है कि सारा समाज उपयुक्त भोजन और वस्त्र, उपयुक्त शिक्षा, आमोद-प्रमोद तथा निवास-स्थानोंसे पूरित रहे, सभी अपने अपने कामोंको सुचारु

रूपसे करते रहें, सब ही स्वच्छ, स्वस्थ और प्रसन्न रहें जिससे वे स्वयं भी यथासम्भव अनिवार्य कष्टोंसे सुरक्षित रहें। इस समय समाजके जितने अंग हैं उन सबको—पूँजीपतियोंतक को—बावजूद उनके वैभवके पूँजीवादने जर्जर कर रखा है। सब अंग सब व्यक्ति, सब समूह, साम्यवादमें अपनी वास्तविक स्वार्थकी सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं, व्यर्थकी परेशानी, प्रतिद्वन्द्विता, रोष और द्वेषमें जीवन न बिताकर हम सब सहयोगके साथ उपयोगी और सुखमय जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

सारी शक्ति जनताके हाथमें आवे

'साम्प्रदायिकताका इलाज साम्यवाद है'

[लेखक—आचार्य नरेन्द्रदेव जी]

कुछ लोगोंके मस्तिष्कमें यह गलत बात बैठ गयी है कि कुछ लाख व्यक्तियोंके जेलमें चले जानेसे स्वतन्त्रता मिल जायगी। हमें इस विचार-धाराके विरुद्ध युद्ध करना होगा, नहीं तो यह बहुत खतरनाक साबित होगी।

यदि आप ब्रिटिश साम्राज्यवादसे समझौता चाहते हैं तो आपके साथ बराबरीका बर्ताव नहीं किया जायगा। शासक जाति

हमें कुछ सुविधाएँ तथा सुधार दे देगी। वह हमसे समझौता करनेको उत्सुक है किन्तु उसे भय है कि कांग्रेस उसे निरर्थक न कर दे, क्योंकि इसका ध्येय पूर्ण स्वाधीनता है।

साम्प्रदायिकताका विष

यह कहना कि हिन्दू-मुसलिम समझौता हो सकता है, बिलकुल गलत है। साम्प्रदायिकताके जहरको नष्ट करनेके लिये साम्यवाद ही एक उपचार है। हम साम्प्रदायिक ऐक्यके पीछे बेकारमें पागल बनकर साम्प्रदायिक निर्णय तथा अन्य इसी प्रकारकी कागजी बातोंके सहारे खड़े हो रहे हैं। ये उनलोगोंके बनाये हुए हैं, जो सरकारसे समझौता करना चाहते हैं। इस प्रकारकी विचार-धाराको टुकड़े-टुकड़े कर देना चाहिये क्योंकि साम्प्रदायिक ऐक्य हमारी समस्याओंको हल नहीं कर सकता।

कांग्रेस क्या करे ?

कांग्रेस सार्वजनिक संस्था न होकर निम्न-मध्यम-श्रेणीकी संस्था है। सरकारने देशी नरेशों, जमींदारों और मिल-मालिकोंको कुछ सुविधाएँ देकर उन्हें अपनी ओर मिला लिया है। किन्तु निम्न-मध्यम-श्रेणी, जो सारे देशमें कांग्रेस संस्थाओंका स्तम्भन है, राजनीतिमें स्थिर भाव नहीं रख सकती। इस श्रेणीकी विचार-धारा समयानुसार बदला करती है। पूँजीवादके फलने-फूलनेसे यह भी समृद्ध होती है। इसीलिये इसका आश्रय ग्रहण नहीं किया जा सकता। सिद्धान्तोंकी अपेक्षा इसमें व्यक्तित्वका अधिक प्रभाव है। कांग्रेसके लिए इसीलिये यह आवश्यक है कि वह देशके किसान और मजदूरोंसे नयी सन्धि स्थापित करे।

हम बुद्धिजीवियोंके सहारे भी नहीं रह सकते, क्योंकि वे हमें किसी समय भी धोखा दे सकते हैं। स्वतन्त्रताकी लड़ाई किसान और मजूरोंके सहारे ही हो सकती है।

मैं नौकरियोंके भारतीय-करणके पक्षमें नहीं हूँ, क्योंकि इससे टैक्स देनेवालोंका बोझ अधिक बढ़ जायगा और मध्य श्रेणीके लोग, अपने स्वार्थोंको शासकोंके स्वार्थोंसे सम्बन्धितकर अधःपतित हो जायँगे। भारतीय-करणसे भारतीयोंकी एक ऐसी श्रेणी पैदा हो जायगी, जिसके स्वार्थ जनताके स्वार्थोंसे संघर्ष करेंगे। इसी दृष्टिकोणसे मैं हिन्दू महासभा और मुसलिम लीगके रुखका विरोध करता हूँ।

रोक क्यों हटायी गयी

भारत सरकारने कांग्रेस संस्थाओंपरसे इसलिये रोक उठा ली है कि सरकार चाहती है कि कांग्रेस कौंसिलोंमें काम करे। यदि कांग्रेस अपने सार्वजनिक कार्यके क्षेत्रको व्यापक बनानेका कभी प्रयत्न करेगी तो आर्डिनेन्स और दमनकारी कानून उसका दमन कर देंगे। यही कारण है कि सरकारने अन्य संस्थाओंपरसे रोक नहीं उठायी है क्योंकि वे सच्चे रूपसे साम्राज्यवादकी विरोधिनी थीं।

जनता साम्यवादको भली प्रकार समझ सकती है। यदि कांग्रेस वास्तवमें देशवासियोंका भला चाहती है तो वह इसलिये लड़े कि 'सारी शक्ति जनताके हाथमें हो।'

समाजवादी और राष्ट्रीयता

दक्षिण पक्षवालोंके आक्षेप साधारणतः दो तरहके हैं।

पहला यह कि समाजवादी सबसे पहले अन्तर्राष्ट्रीयतावादी हैं और इस कारण स्वाधीनता संग्राममें उनपर पूरा पूरा भरोसा नहीं किया जा सकता। कहा जाता है कि ऐसी अवस्थाएँ उत्पन्न हो सकती हैं जिनमें हम समाजवादपर देशकी स्वाधीनताकी बलि चढ़ानेको तैयार हो सकते हैं। इस शंकाके अंकुरको ही उखाड़ देनेके लिये मैं यह बात जोर देकर कह देता हूँ कि स्वाधीनता और सामजवादमें परस्पर विरोध नहीं है। सच तो यह है कि शासनाधिकार प्राप्तिके बिना समाजवादी राष्ट्रका निर्माण किया ही नहीं जा सकता और भारतकी वर्तमान अवस्थामें जो साम्राज्यवाद-विरोधी आन्दोलन चल रहा है वह समाजवादकी प्रस्तावना मात्र है। हममें राष्ट्राभिमानका अभाव हो यह बात भी नहीं है। अवश्य ही उग्र अथवा लड़ाकी राष्ट्रीयतासे हमें घृणा है और 'मैं अपने देशके साथ हूँ, चाहे वह न्यायपर हो वा अन्यायपर'—यह हमारा सिद्धान्त नहीं है। हम दूसरोंको उनके पूर्व पुरुषोंसे मिली हुई विरासतसे वंचित करना भी नहीं चाहते बल्कि हम उनके साथ मित्रताका सम्बन्ध जोड़ना चाहते हैं और उनके सहयोगसे ऐसे विश्व-समाजका निर्माण करना चाहते हैं जिसमें गरीब और कमजोर धनवानों और बलवानोंद्वारा चूसे न जाते हों और जिसकी स्थापना मानव-जातिके स्वतन्त्र सहयोगके आधारपर हुई हो।

शायद कुछ लोगोंको सन्देह हो कि मैं समाजवादीकी स्थिति ठीक ठीक बता रहा हूँ या नहीं, इसलिये मैं अपने कथनकी पुष्टिमें लेनिनके नीचे लिखे वाक्य पेश करता हूँ—'क्या राष्ट्राभिमानका भाव वृहत् रूसकी वर्गबोधवाली जनताके स्वभावके विरुद्ध है?

कदापि नहीं। हम अपनी भाषा और देशको प्यार करते हैं। हमारे हृदय राष्ट्राभिमानसे भरे हैं और यही कारण है कि अपनी पिछली...(और)...आजकी गुलामीको हम एक खास तरहकी नफरतकी निगाहसे देखते हैं.........कोई राष्ट्र जो दूसरे देश-वालोंपर जोर जुल्म कर रहा है, स्वयं स्वतन्त्र नहीं हो सकता—यह शिक्षा है १९ वीं शताब्दीकी युक्तिसंगत लोक-सत्ताके महान् प्रतिनिधि मार्क्स और एंजेलको जो आज क्रांतिवादी जनवर्गके गुरु और शिक्षक हैं। और चूँकि हमारे हृदय राष्ट्राभिमानसे भरे हुए हैं इसलिये वृहत् रूसके हम श्रमीजन ऐसे वृहत् रूसको देखना चहते हैं जो स्वतंत्र और स्वाधीन, लोकतन्त्रवादी और प्रजातंत्रयुक्त तथा अपने ऊपर गर्व करनेवाला हो और अपने पड़ोसियोंके साथ जिसका व्यवहार समानताके मानवभावसे प्रेरित होकर होता हो, 'हमारा हक सबसे पहले है', 'सब हमारा ही हक है'—प्रत्येक राष्ट्रको पतनकी ओर ले जानेवाले इस कुत्सित भावसे प्रेरित होकर नहीं।"

कदाचित् इस आक्षेपका कारण मार्क्सके इस वचनका अर्थ समझनेमें भ्रम होना है कि 'मजदूरोंका कोई स्वदेश नहीं होता। मार्क्सने इस वाक्यके द्वारा केवल यही बताना चाहा है कि मजदूर वर्गवाले अपने ही देशमें हीन समझे जाते और सब अधिकारों तथा सुख सुविधाओंसे वंचित होते हैं, जिसमें लड़कर अपने लिये अधिकार प्राप्त करनेकी आवश्यकता उनपर साबित हो जाय।

——❀❀❀❀——

स्वाधीनता संग्राम

और समाजवादी

———❀❀———

(ले०—आचार्य नरेन्द्रदेव जी)

———❀❀———

दूसरा आक्षेप यह है कि इस समय वर्गयुद्धका प्रश्न उपस्थितकर हम आजादीके लिये लड़नेवालोंमें फूट डालते और स्वाधीनता-संग्रामको कमजोर बना रहे हैं। हमें यह कहनेके लिये क्षमा किया जाय कि वर्तमान स्थितिमें मजदूरों और किसानोंको राजनीतिक लड़ाईमें शामिल किये बिना हमारे लिये स्वाधीनता प्राप्त करना असम्भव है। दुर्भाग्यवश कांग्रेसने अबतक साधारण जनताके पास ठीक रास्तेसे पहुँचनेकी ओर समुचित ध्यान नहीं दिया। हम कांग्रेसपर जानबूझकर लापरवाही दिखानेका दोष नहीं लगाते, उलटे देशमें वही एकमात्र ऐसी राजनीतिक संस्था है जिसने साधारण जनताके साथ सम्बन्ध स्थापित करनेका यत्न किया है। फिर भी उसके पास पहुँचनेका उसका रास्ता ठीक नहीं था और इसलिये उसके यत्न उतने सफल नहीं हुए जितने समुचित रूपमें होनेसे हो सकते थे। इस मौकेपर कांग्रेसका एक नयी नीति स्वीकार करना बहुत ही आवश्यक हो रहा है और यह कार्य इस बातको पहलेसे मानकर करना होगा कि देशमें कुछ ऐसे विशेष वर्ग हैं जिनके सामने पहले उनके आर्थिक हितकी बात रखनी होगी, इसके बाद वे

राजनीतिक कार्यके लिये संघटित किये जा सकेंगे, और साम्राज्य-वाद-विरोधी युद्धमें जिनका प्रभावकारी रूपमें उपयोग कर सकनेके पहले वर्गके आधारपर उनका संघटन करना होगा। चूँकि विदेशी साम्राज्यवादियोंने अपनी स्थिति दृढ़ करनेके लिये देशके प्रगति-विरोधी वर्गों—राजाओं, जमींदारों और पूँजीपतियोंको अपनी ओर मिलाकर गुट बना लिया है, इसलिये हमारे लिये यह और भी आवश्यक हो गया है कि देशके उग्र परिवर्तन चाहनेवाले वर्गोंको अपने पक्षमें लावें और साम्राज्यवादियों और उनके स्वदेशी मिलोंके नये गुटका मुकाबला करनेके लिये सफेदपोश, मजदूर और किसानवर्गोंको अपनी ओर लाकर एक संयुक्त दल बनावें। भारतका पूँजीपतिवर्ग मध्यवित्तवर्गका लोकतन्त्र शासन स्थापित करानेवाली क्रान्तिका नेतृत्व नहीं ग्रहण कर सकता। पूँजीवाद बहुत दिनोंसे क्रान्तिकारी शक्ति नहीं रह गया है। भारतमें तो उसका सामाजिक आधार बहुत ही संकुचित है और इस कारण वह अकेले कोई कार्य नहीं कर सकता। इसके सिवा भारतके देहातका सरदारी या जागीरदारी ढङ्गका आर्थिक सङ्गठन और सब प्रकारके सामाजिक सम्बन्धोंपर असर डालता है। इस-लिये पूँजवादी वर्गने जमींदारोंके साथ दोस्ती गाँठ ली है और ऐसी अवस्थामें वह जमींदारी प्रथाका नाश करेगा, इसकी आशा उससे नहीं की जा सकती। इस प्रकार भारतकी चूसी जानेवाली जनताके लिये इस कार्यको भी पूरा करना आवश्यक हो रहा है जो पश्चिममें मध्यवित्तवर्गने किया था।

भारतके जमींदार ब्रिटिश राजकी सृष्टि हैं और वे स्वभावतः पूँजीपति वर्गसे सहायता पानेका भरोसा रखते हैं। कुछ थोड़ेसे

व्यक्तियोंको जमींदार वर्गरूपसे राष्ट्रीय संग्रामसे अलग रखे हैं और वर्गगत संघर्ष ज्यों ज्यों बढ़ता जायगा वे विरोधी पक्षकी ओर अधिकाधिक होते जायँगे। यह बात स्पष्ट है कि भविष्यमें स्वाधीनता संग्रामको चलानेका बोझ मुख्यतः मजदूरों, किसानों और सफेदपोश वर्गोंको ही अपने ऊपर लेना होगा।

चीनका उदाहरण

देशकी विभिन्न शक्तियोंके परस्पर सम्बन्धपर बारीकीसे विचार करनेसे कांग्रेसके वर्त्तमान कार्यक्रमके नाकाफी होनेकी बात प्रकट हो जायगी। इस कार्यक्रमके प्रत्येक अङ्गकी जाँच पड़ताल और संशोधन परिवर्तन होना अत्यावश्यक हो गया है। हमें "कुओमिनतांग" अर्थात् चीनवालोंके राष्ट्रीय संघटनके पिछले इतिहाससे शिक्षा लेनी चाहिये। १९२४ में अपने पुनस्संघटन सम्मेलनमें उसने निश्चय किया कि आगेसे वह मजदूरों और किसानोंके हितकी ओर खास तौरसे ध्यान दिया करेगा। निश्चयको कार्यका रूप दिया गया और मजदूरों किसानोंकी हितरक्षाके लिये "कुओमिनतांग"के विशेष विभाग खोल दिये गये। हर एक गाँव और जिलेमें किसानोंके संघ बनाये गये और बड़े जमींदार तथा महाजन कड़ाईके साथ उनकी सदस्यतासे अलग रखे गये। इन्हींके संघोंद्वारा जमींदारोंकी आर्थिक और राजनीतिक शक्तिके विरुद्ध किसानोंके आन्दोलनका संघटन हुआ। किसान आन्दोलन वनकी आगकी तरह देशमें फैल गया और तीन ही सालके अरसेमें केवल एक प्रान्तमें उसके सदस्योंकी संख्या कई लाख हो गयी। चीनी मजदूरोंके भी संघ बन गये और उनके बीचमें

जाकर काम करनेका नतीजा यह हुआ कि चीनके मजदूर शीघ्र ही बहुत बड़ी राजनीतिक शक्ति बन गये ।

१९२६–२७की क्रान्तिमें कुओमिनतांगके इस नये कार्यक्रम-की ही बदौलत ऐसी चमत्कारिणी सफलता मिल सकी और यदि इस क्रान्तिके नेता ही पीछे क्रान्तिविरोधी न हो गये होते तो चीन आज एक स्वाधीन देश होता और उसके पास इतना बल होता कि जापानी साम्राज्यवादके हमलोंको व्यर्थ कर देता तथा उसकी धमकियोंको लापरवाहीके साथ अनसुनी कर सकता ।

कांग्रेस और मजदूर आन्दोलन

यह बात सोचनेसे दुःख होता है कि कांग्रेसने कारखानेके मजदूरोंका लगातार उपेक्षा की है जिसका नतीजा यह हुआ कि मजदूर कांग्रेससे फटे फटे रहते हैं । दुर्भाग्यवश मजदूर संघोंमें आज कांग्रेसकी ओरसे उदासीनता ही नहीं किन्तु स्पष्ट विरोधका भाव भी दिखायी दे रहा है । फल यह हुआ है कि कांग्रेस आज ऐसी स्थितिमें नहीं है कि अपनी सहायतामें मजदूरोंसे राजनीतिक हड़ताल करा सके । देशमें मजदूरोंकी जबर्दस्त हड़तालें हो चुकी हैं पर आम तौरसे वे आर्थिक स्वरूपकी ही हड़तालें रही हैं । मजदूरोंके आर्थिक आन्दोलनको अभी राजनीतिक आन्दोलनका रूप नहीं प्राप्त हुआ। यही कारण है कि भारतके मजदूर राजनीतिक शक्तिकी दृष्टिसे आज इतने कमजोर हैं और उनका राजनीतिक महत्व इतना कम है । मैं वर्तमान स्थितिका, जैसी कुछ वह मुझे दिखायी देती है, वर्णनमात्र कर रहा हूँ । मैं एक क्षणके लिये भी यह नहीं मानता कि एक क्रान्तिकारी शक्तिकी हैसियतसे मजदूरोंके

आन्दोलन अधिक महत्वके नहीं हैं और न मैं इसी बातसे इनकार करता हूँ कि समुचित कार्य प्रणालीसे काम लेनेसे वह सहज ही जबर्दस्त राजनीतिक ताकत बन सकता है और राष्ट्रीय आन्दोलन-का नेतृत्व अपने हाथमें ले सकता है। हमारे देशकी आजकी अवस्थामें यह बात केवल एक ही तरीकेसे हो सकती है। मजदूरों-को कांग्रेसके साम्राज्यवाद विरोधी आन्दोलनमें शामिल होना चाहिये। भारतमें हड़तालका हथियार अभी जनवर्गके संघर्षका संकेत नहीं बना है, जैसा कि रूसमें हुआ था। पर मजदूरवर्ग अपना राजनीतिक प्रभाव तभी बढ़ा सकता है जब आम हड़ताल-के हथियारको राष्ट्रीय संग्रामकी सहायतामें इस्तेमाल करके वह सफेदपोश वर्गके मनपर यह बात जमा सके कि यह हथियार क्रान्तिका साधन बन सकता है। कांग्रेसको कोई कितना ही क्यों न कोसे देशमें आज वही एकमात्र ऐसा संघटन है जिसके सुविस्तृत मंचपरसे साम्राज्यवाद-विरोधी आन्दोलन आप चला सकते हैं। और वही एकमात्र ऐसा केन्द्र है जहाँसे इस संग्रामका संचालन किया जा सकता है। जनवर्गके संघर्षके लिये कांग्रेस एक विस्तृत मैदान है, जहाँ जाकर मजदूर और किसान राजनीतिकी शिक्षा प्राप्त कर सकते और अपना प्रभाव तथा प्रतिष्ठा बढ़ा सकते हैं।

समाजवादी दलका जन्म कैसे हुआ

स्पष्ट ही है कि आक्षेप करनेवाला इस बातपर ध्यान नहीं देता कि किस परिस्थितिमें कांग्रेस समाजवादी दलका जन्म हुआ है और वह देशकी साधारण राजनीतिक स्थितिपर भी ध्यान नहीं देता।

यह दल किस कारणसे कांग्रेसके अन्दर है इसको ढूँढ़नेके लिये दूर जानेकी जरूरत नहीं है। संग्राममें कांग्रेसजनोंके एक दलमें आमूल परिवर्तनका विचार उत्पन्न होनेमें इस दलका जन्म हुआ है। वे लोग संसारके 'समाजवादी' विचारोंसे प्रभावित हुए। उन्होंने देखा कि पश्चिमके लोकतन्त्रपर संकट आया है और पार्लमेंटरी संस्थाएँ चारों ओरसे चूर चूर हो रही हैं। उन्होंने यह भी देखा कि फासिटीवादका खतरा बढ़ता जा रहा है, पूँजीवादका क्षय हो रहा है और वह साम्राज्यवादकी अन्तिम अवस्थामें पहुँच गया है। उन्होंने स्पष्ट देखा कि संसारके सामने स्वीकार करनेके लिये दो ही चीजें हैं, वह या तो फासिटी-वादको स्वीकार करे या समाजवादको, और पूँजीशाहीका भविष्य कुछ नहीं है। उन्होंने देखा कि संसार भारी अर्थ-संकटके बीचमें पड़ा हुआ है जिसका अन्त नहीं दिखायी देता। उन्होंने देखा कि केवल रूस ऐसा है जो समाजवादकी ओरसे ठोस रूपसे अग्रसर हुआ है और अन्धकारके बीचमें गरीबों, दलितों और कुचले हुए लोगोंके लिये एकमात्र वही आशा है। आजका दिन महान् स्फूर्तिदायक है, क्योंकि वह मानवसमाजके नये समयका अग्रदूत है।

दूसरे देशोंकी क्रान्तियोंके इतिहास पढ़कर वे लोग इस नतीजेपर पहुँचे कि कांग्रेसका कार्यक्रम आमूलतः बदलकर पूर्ण-स्वाधीनता प्राप्तिका बना देना चाहिये। साम्राज्यवाद-विरोधी युद्ध-की अत्यन्त आवश्यकताने उनको इस अवस्थामें पहुँचाया और उन्होंने कांग्रेसके सभा-मंचको साम्राज्यवाद-विरोधी युद्धका मैदान बना देनेकी बिलकुल ठीक बात सोची।

ऐसी स्थितिमें हमलोगोंके कांग्रेससे अलग होनेका कोई प्रश्न ही नहीं उठता था। हमसे अलग दल बनवानेके लिये तो और ही लोग जिम्मेदार हैं। यदि देशमें श्रमजीवियोंका सच्चा दल होता जो भारतकी स्थितिके अनुकूल उपयुक्त कार्यप्रणालीसे काम करता, यदि वह जनवर्गसे और राष्ट्रीय आन्दोलनसे अपनेको अलग न रखता, यदि वह इसी देशमें जड़ जमाता और इस नीतिका पालन करता कि मौलिक सिद्धान्तोंका उपयोग इस प्रकार होना चाहिये कि खास खास विषयोंमें उनका सच्चा सुधार भी होता चले, उपयुक्त रीतिसे वे कार्यान्वित हो सकें और राष्ट्रकी सम्मतिका खयाल रखकर उनका उपयोग हो सके, इसके विपरीत यदि वह अपनेको एक ऐसी विदेशी संस्थाका पुछल्ला न बनाये रहता जो अपनी अदूरदर्शिता और नौकरशाही ढङ्गकी नियन्त्रण-प्रणालीके कारण अपना पूर्ण गौरव और प्रभाव बहुत कुछ खो चुका है तो अलग दल सङ्गठित करनेकी कोई आवश्यकता ही न पड़ती। यह दल साम्राज्यवाद-विरोधी आन्दोलनको चलानेके लिये कांग्रेस-मञ्चका उपयोग करता है। यह किसानों और मजदूरोंके अलग अलग संघ स्थापित करता है। व्यवसाय संघ क्षेत्रमें यह सर्वभारतीय मजदूर संघ कांग्रेसके पूर्ण सहयोगसे काम करता है और जनवर्गमें काम करता है और जनवर्गको यह जितना ही अधिक अपनावेगा और अपने वास्तविक और ठोस कामसे उसका विश्वास जितना ही अधिक अपनेपर बढ़ावेगा उतना ही इसका प्रभाव भी जनवर्गपर पड़ेगा।

हम दृढ़ता-पूर्वक शक्ति-सञ्चय कर रहे हैं और यह कहते हैं कि थोड़े ही दिनोंमें हम समाजवादके अनुकूल वातावरण

उत्पन्न करने और साम्राज्यवाद विरोधी अपने कार्यक्रमके पक्षमें जनसाधारणका विशेष समर्थन प्राप्त करनेमें सफल हुए हैं। अभी यह नियम है कि हमारे दलके सदस्य केवल कांग्रेसजन ही हो सकते हैं, समय पाकर हम इस नियममें भी संशोधन करेंगे। यह भी सम्भव है कि समय पाकर सब समाजवादी समूह मिलकर एक दलमें परिणत हो जायँ। पर जबतक ऐसा नहीं होता तबतक हमें अलग अलग दलोंमें रहकर ही काम करनेमें सन्तोष मानना चाहिये और साथ ही यह भी कोशिश रखनी चाहिये कि जिन विषयोंमें हम मिलकर काम कर सकते हों उनमें सहयोग करें।

मुझे बताया गया है कि लोग कहते हैं कि हमारा समाजवाद दिखाऊ है। यह आक्षेप शायद इसलिए किया जाता है कि हमारी संस्था कांग्रेससे सम्बद्ध है। हम कांग्रेसजनोंके सहसा समाजवादी हो जानेपर आश्चर्य प्रकट किया जाता है और हमारी सचाईपर सन्देह किया जाता है। यह दलील दी जाती है कि जो लोग इतने दिनोंतक गान्धीवादके प्रभावमें रहे हों वे सहसा समाजवाद नहीं स्वीकार कर सकते। यह बात श्रमजीवियोंके लिये अधिक उपयुक्त है। वे यदि अपनी मर्जीपर छोड़ दिये जायँ तो उनमें केवल व्यवसायसंघवादकी ही भावनातक उत्पन्न हो सकती है। हमें यह भूलना नहीं चाहिये कि समाजवादका विचार स्वतन्त्र रूपसे उत्पन्न हुआ, श्रमजीवियोंके आन्दोलनको आधार मानकर नहीं। समाजवादकी ओर झुकाव रखनेवालोंके विचारमें क्रांति होनेके फलस्वरूप स्वभावतः समाजवादकी उत्पत्ति हुई।

मेरी समझमें तो कांग्रेसके अति उग्र विचारवालोंने साम्रा-

ज्यवाद विरोधी जो कार्यक्रम स्थिर किया है और जिसके आधार-पर वे लड़ाई ठानना चाहते हैं वह बहुत ही नरम है। यह कार्यक्रम तो लड़ाईका कार्यक्रम कहला नहीं सकता। साम्राज्यवाद-विरोधी आन्दोलनमें सफलता प्राप्त करनेके लिये यह सर्वथा अनुपयुक्त है। देशमें जो लोग जनवर्गको चूसनेवाले हैं उनके विरुद्ध जनवर्ग-को सङ्गठित करनेकी तो कोई योजना इस कार्यक्रममें है ही नहीं। कार्यक्रममें किसान मजदूरोंकी आर्थिक उन्नतिकी जो योजना है वह इतनी मामूली है कि उसके आधारपर साम्राज्यवाद विरोधी आन्दोलनमें पड़नेके लिये जनवर्ग सङ्गठित हो ही नहीं सकता।

समाजवादी दलका कर्त्तव्य

कांग्रेस समाजवादी दलके कर्त्तव्यपर बम्बईके एक अखबारने हालमें विचार किया है। लेखकने सहानुभूतिके साथ इसपर विचार किया है और इस दलका स्वागत किया है, मगर सलाह दी है कि यह दल तभी प्रभावशाली हो सकता है जब अपनेको तोड़ दे और कांग्रेसका वामपक्ष बनकर काम करे। कहा जाता है कि कांग्रेससे यह आशा नहीं की जा सकती कि वह समाजवाद-को अपना उद्देश्य बनावे, इसलिये कांग्रेसमें समाजवादकी चर्चा करनेसे निश्चय ही साम्राज्यवाद विरोधी युद्धके कामपर उलटा प्रभाव पड़ेगा। मैं स्वयं इस बातसे सहमत हूँ कि कांग्रेस समाज-वादके प्रचारकी जगह नहीं है और उसका मुख्य कार्य साम्राज्य-विरोधी युद्धको बढ़ाना है। परन्तु हमें यह भूल न जाना चाहिये कि वर्तमान स्थितिमें ऐसा युद्ध तभी बढ़ सकता है जब हम उसमें जनताकी आर्थिक माँगोंको शामिल कर सकें और वह तभी हो

सकता है जब कांग्रेसमें एक ऐसा दल हो जो आर्थिक कार्यक्रम स्वीकार करानेके लिये लगातार आन्दोलन करता रहे। मेरा यह भी मत है कि कांग्रेस कार्यकर्ताओंमें समाजवादके प्रचारके लिये लगातार कार्य करनेकी अत्यन्त आवश्यकता है, क्योंकि हम इसमें जितने अधिक सफल होंगे कांग्रेसके साम्राज्यवाद विरोधी युद्धका प्रभावशाली कार्यक्रम स्वीकार करनेकी उतनी ही अधिक सम्भावना होगी। अगर दूसरे किसी कारणसे न सही तो इस कारणसे ही इस दलको अपना काम जारी रखना होगा। यह बहुत जरूरी काम उस दलसे नहीं हो सकता जिसका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है और मैं समझता हूँ कि गत बारह महीनोंके अनुभवसे हमने जो मार्ग अवलम्बन किया है उसका औचित्य भलीभाँति सिद्ध हो जाता है। अब रह गयी बात अपनी उस नीतिपर फिरसे विचार करनेकी जिसको हम अबतक कांग्रेसके अन्दर बरतते आये हैं। मैं अपना मत पहले व्यक्त कर चुका हूँ कि उसमें जरा-सा—मगर महत्वपूर्ण संशोधनकी आवश्यकता है और मैंने यह भी बता दिया है कि किस दिशामें यह परिवर्तन होना चाहिये। मुझे मालूम है कि इस विषयपर इस दलका ध्यान जा रहा है और मुझे आशा है कि अगर इस दलको विश्वास हो जायगा कि परिस्थिति उसकी नीतिमें यह परिवर्तन चाहती है तो वह निश्चय ही इस सम्बन्धमें उचित कार्रवाई करेगा।

कांग्रेस वर्किंग कमेटी और साम्यवादी दल

[लेखक—आचार्य नरेन्द्रदेव]

कांग्रेस वर्किंग कमेटीकी ओरसे कांग्रेस साम्यवादी दलपर जो आक्षेप किये गये हैं उनका उत्तर देना कर्तव्यसा हो गया है। साथ ही साथ कमेटीकी वर्तमान नीतिकी आलोचना करना भी आवश्यक मालूम होता है। साम्यवादी दलके प्रति कमेटीका जो बदला हुआ रुख है वह भी उसकी वर्तमान नीतिका ही फल है। इसलिये उसकी नीतिकी चर्चा करना भी असंगत न होगा।

वर्किंग कमेटीकी टीका-टिप्पणी करते हुए मुझे कोई खुशी नहीं होती, केवल कर्त्तव्यकी दृष्टिसे ही इस अरुचिकर कार्यमें प्रवृत्त होना पड़ता है। साथ ही साथ आत्मरक्षाका भी ख्याल है। वर्किंग कमेटीने साम्यवादी दलपर जो गहरी चोट की है उसको चुपचाप बर्दाश्त कर लेना अहिंसाके सिद्धान्तके अनुकूल भले ही हो किन्तु वह कायरतापूर्ण कार्य होगा। यदि किसी गैरजिम्मेदार संस्थाकी ओरसे ऐसी बात कही गयी होती तो उसकी उपेक्षा की जा सकती थी; किन्तु वर्किंग कमेटी ऐसी जिम्मेदार और प्रभावशाली संस्थाकी किसी भी बातकी उपेक्षा नहीं की जा

सकती। फिर वर्किंग कमेटीने जो आक्षेप हमलोगोंपर किये हैं वह कोई साधारण आक्षेप नहीं हैं। वह तो हमको कांग्रेससे ही काटना चाहती है। वह तो हमको कांग्रेसमें कोई स्थान देनेको तैयार नहीं है। यदि उसका बस चले तो वह हमको आज कांग्रेससे निकाल दे।

यदि वर्किंग कमेटी यह कहती कि वह साम्यवादी दलके सिद्धान्त और उसकी नीतिको स्वीकार नहीं करती तो हमको कोई आपत्ति न थी। चुनावकी आवश्यकताओंको देखते हुए शायद इतनी सफाई देनेसे उसका काम भी चल जाता। हमारी सबसे बड़ी शिकायत तो यह है कि वर्किंग कमेटीने हमारी बातको बिना सुने ही हमारे सम्बन्धमें कुछ गलत धारणाएँ बना ली हैं और उन्हींके आधारपर कांग्रेसके दायरेमें हमारे बढ़ते हुए प्रभावको रोकनेके लिये अहिंसाकी शरण लेकर हमारे ऊपर एक जबर्दस्त वार किया है। हमने साम्यवादी कानफरेन्सके मुख्य प्रस्तावकी कुछ प्रतिलिपियाँ वर्किंग कमेटीके पास पटनेमें भेज दी थीं और हमारी यह परम इच्छा थी कि वहीं अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटीमें उस प्रस्तावपर विचार हो। किन्तु हमारे सब प्रयास विफल हुए और सभापति महोदयने यह कहकर हमारे प्रस्तावको टाल दिया कि वर्किंग कमेटीने अभी उस प्रस्तावपर विचार नहीं किया है। हमको यह वचन दिया गया था कि कमेटीके बम्बईके अधिवेशनमें इस प्रस्तावपर विचार करनेका अवसर दिया जायगा। हम समझते थे कि बम्बईके अधिवेशन-तक वर्किंग कमेटीकी ओरसे ऐसी कोई कार्रवाई न होगी जिससे प्रस्तावके स्वतन्त्र विचारमें किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित हो।

वर्किंग कमेटीको पूरा अधिकार था कि वह उस प्रस्तावके सम्बन्धमें अपना मत प्रकट कर देती। पर जो आक्षेप हमारे ऊपर किये गये हैं उनसे हमारे प्रस्तावसे कोई सम्बन्ध नहीं है। उस प्रस्तावमें तथा कानफरेन्सके अन्य प्रस्तावोंमें जायदादकी जब्ती अथवा श्रेणी-युद्धकी आवश्यकताकी कोई चर्चा नहीं है। हमने अपने प्रस्तावोंमें या भाषणमें असंयत भाषाका कदापि प्रयोग नहीं किया है। हमने अपने प्रस्तावमें केवल इतनी बात कही है कि पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके उपरान्त देशका शासन-विधान तैयार करनेके लिये एक विधान सम्मेलन (कांस्टिटुएन्ट असेम्बली) बुलायी जानी चाहिये और उस सम्मेलनमें जो विधान तैयार किया जाय उसे साम्यवादके सिद्धान्तोंके आधारपर बनाना चाहिये। साम्यवादके कुछ मौलिक सिद्धांतोंका भी हमने निर्देश कर दिया था। इनमेंसे एक दो सिद्धान्तोंका यहाँ उद्धृत करना आवश्यक है। पहला सिद्धान्त तो यह है कि देशके भावी शासनमें प्रधान व्यवसाय व्यक्तियोंकी सम्पत्ति न होकर समाजकी सम्पत्ति हो; जिसमें धीरे धीरे उत्पादन, वितरण और विनियमके सकल साधन समाजके हाथमें आ जावें। इसीके आधारपर यह कहा जाता है कि हम व्यक्तिगत सारी सम्पत्तिको जब्त करना चाहते हैं। इसीका समकक्ष प्रस्ताव करांची कांग्रेस तथा अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटीद्वारा स्वीकृत हुआ है। उसमें भी लगभग यही बात कही गयी है। उसमें कांग्रेसने स्पष्ट कर दिया है कि हमको ऐसा कोई स्वराज्य स्वीकार न होगा जिसमें प्रधान व्यवसाय, रेल आदिका स्वामित्व राज्यको प्राप्त न हो। अभी वर्धामें वर्किंग कमेटीकी जो बैठक हुई थी उसमें भी करांचीके

प्रस्तावकी चर्चा उठी थी और कमेटीने यह नियम किया था कि मेम्बरीकी रसीदपर उस प्रस्तावके खुलासेको छाप देना चाहिये। साथ साथ कमेटीने एक खुलासा भी तैयार किया और यह खुलासा उसकी ओरसे प्रकाशित कर दिया गया है। इस खुलासे-में कमेटीने इस वाक्यका प्रयोग किया है—

"नेशनलाइजेशन आफ दि इराडस्ट्रीज एराड सर्विसेज, रेलवेज, एटसेट्रा" अर्थात् देशके प्रधान व्यवसाय राष्ट्रकी मिलकियत होंगे। दूसरे शब्दोंमें, जहाँतक इन व्यवसायोंका सम्बन्ध है, व्यक्तिगत सम्पत्तिका लोप हो जायगा।

कराँचीके प्रस्तावमें हरजाना देने या उचित कारणोंके देनेका कोई जिक्र नहीं है। यह स्पष्टीकरण वर्किंग कमेटीकी ओरसे आज पेश किया गया है। यह स्पष्टीकरण इसलिये आज किया जा रहा है जिसमें वर्किंग कमेटी दूसरोंपर उँगली उठा सके। जो शीशेके मकानमें रहता है वह किस तरह दूसरोंपर ढेला फेंक सकता है? इसलिये इस स्पष्टीकरणकी पत्थरकी चहारदीवारी खड़ी कर और अपनेको हर तरह सुरक्षित करके वर्किंग कमेटी दूसरोंपर आक्रमण करना चाहती हो पर इससे भी उसकी रक्षा नहीं होती क्योंकि इस स्पष्टीकरणमें हर हालतमें हरजाना देना आवश्यक नहीं है। वर्किंग कमेटीकी रायमें उचित कारण बताकर भी व्यक्तिगत सम्पत्ति राष्ट्रकी सम्पत्ति बनायी जा सकती है। क्या केवल कुछ शब्दोंके जोड़ देनेसे ही जो चीज आज हिंसा और विद्वेषमूलक है कल अहिंसा-सम्मत हो सकती है? हम मानते हैं कि शब्दोंका मायाजाल विचित्र है और हम यह भी मानते हैं कि वर्किंग कमेटीके वह सदस्य या परामर्शदाता जो किसी समयमें

वकालतका पेशा करते थे इस कार्यमें कुशल और सिद्धहस्त हैं। प्रस्तावोंकी भाषाको जान बूझकर ऐसा रखना जिसमें उसके कई अर्थ लगाये जा सकें एक बहुत बड़ा हुनर है। समय समयपर इससे बड़े बड़े काम भी निकलते हैं। पर इस नीतिके बर्तनेसे और अपने मन्तव्योंको गोलमगोल रखनेसे स्वतन्त्रताकी लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती। शब्दोंका क्या जादू होता है इसको जानकर ही प्रस्तावमें 'जब्ती' शब्दका प्रयोग किया गया है यद्यपि हमारे प्रस्तावोंमें 'जायदादकी जब्ती' का कोई जिक्र नहीं है। 'जब्ती' से जोर जबर्दस्ती और हिंसाका भाव झलकता है। हम पूछते हैं कि क्या यह नीति वर्किंग कमेटीको शोभा देती है? क्या यह उसके लिये उचित है कि वह इन उपायोंसे काम लेकर अपने विरोधियोंको दबानेकी चेष्टा करे? लुत्फ तो यह है कि कहनेको वर्किंग कमेटी हमारा स्वागत उसी तरह करती है जिस तरह कुलमें वृद्धि होनेपर नवजात शिशुका स्वागत किया जाता है, पर हमारे कांग्रेसके बुजुर्गोंके स्वागतका ढंग भी अनोखा है। एक ओर स्वागत करते हैं, दूसरी ओर विषके घूँट पिलाते हैं।

हम अपनी स्थिति इस विषयमें स्पष्ट कर देना चाहते हैं। सब प्रकारकी व्यक्तिगत सम्पत्तिका लोप कर देना हमको अभीष्ट नहीं है। आज समाजमें जो लूट-खसोट हो रहा है और एक वर्गकी ओरसे दूसरे वर्गका अर्थ शोषण हो रहा है केवल उसे हम बन्द करना चाहते हैं। कांग्रेसका भी कुछ दिनोंसे यह दावा रहा है कि वह प्रचलित लूट और अत्याचारको बन्द करना चाहती है। इस दावेको वर्किंग कमेटीने अपने प्रस्तावमें आज भी दुहराया है। हमारा यह विचार है कि उत्पादनके साधनोंपर व्यक्तियोंका प्रभुत्व होनेके

कारण ही गरीबोंका शोषण और दोहन होता है। समाजकी जिस व्यवस्थाके कारण जनसाधारणका लुंठन होता है और राष्ट्रकी सारी पूँजी मुट्ठीभर आदमियोंके हाथमें केन्द्रीभूत हो जाती है उस व्यवस्थाके बदलनेसे ही अभीष्टकी सिद्धि हो सकती है। पूँजीप्रथाके अनुसार परिचालित समाजमें जो वर्ग-कलह चलता रहता है तथा बहुसंख्यक लोगोंकी दरिद्रता दिनपर दिन बढ़ती जाती है उसका हम अन्त करना चाहते हैं। यदि हम इस संसारसे दारिद्र और दैन्यको उठा देना चाहते हैं, यदि हम चाहते हैं कि राष्ट्रके बीच प्रीति और सद्भाव स्थापित हो, यदि प्रत्येक राष्ट्रके भीतर ही जो वर्ग-कलह चलता रहता है उसका हम अन्त करना चाहते हैं, सारांशमें यदि हम अपने देश तथा मानव-जातिका सच्चा हित साधित करना चाहते हैं, तो हमको उत्पादनके उन सारे साधनोंपर समाजका प्रभुत्व स्वीकार करना चाहिये जिनके द्वारा पूँजी-प्रथामें समाजकी कुछ श्रेणियोंको दूसरोंके लूटनेका अवसर प्राप्त होता है। क्या देशके प्रधान व्यवसाय और बंकोंको समाजके अधिकार और प्रभुत्वमें लानेके लिये यह उचित और पर्याप्त कारण नहीं है? क्या ९०-९५ फी सदी लोगोंके कल्याणके लिये समाजकी आर्थिक व्यवस्थामें आवश्यक परिवर्तन करनेका स्टेटको अधिकार नहीं है? क्या भारतके स्वतन्त्र होनेपर लोकतन्त्र प्रणालीके अनुसार बहुमतसे कार्य नहीं होगा? यदि कांग्रेस हमारे कार्यक्रमके सम्बन्धमें यह निश्चय करती है कि अर्थ-शोषण इससे बन्द नहीं होगा अथवा अन्य सुगम उपायोंसे यही बात हासिल हो सकती है तो उसको अपना कार्यक्रम देशके सामने रखना उचित है।

दूसरी बात हमारे विरुद्ध यह कही जाती है कि हम श्रेणी-युद्धकी आवश्यकताको मानते हैं। ऐसा हमने कहीं भी नहीं कहा है। हाँ, बहुतसे साम्यवादियोंका यह विचार है कि मानव-समाजका इतिहास सदासे (जबसे इतिहास लिपिबद्ध हुआ है) वर्ग-संघर्षका इतिहास रहा है। उनका कहना है कि साम्यवादकी स्थापना ही इस वर्ग-कलहको बन्द कर सकती है। इतिहासके अध्ययनकी यह एक दृष्टि है। आप इस दृष्टिको स्वीकार न करें। आप कह सकते हैं कि मानव-समाजका इतिहास विविध वर्गोंके परस्पर सहयोगका इतिहास रहा है। किन्तु यह कहना कि हमलोग अपना मतलब साधनेके लिये विविध श्रेणियोंको लड़ानेकी आवश्यकता स्वीकार करते हैं; हमारे साथ अन्याय करना है। साम्यवादियोंका यह कहना है कि वर्ग-संघर्ष तो निरन्तर चलता रहता है। प्रश्न यह है कि इस संघर्षमें हम किसका साथ देंगे। हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि इस कलहमें हम उनलोगोंका ही साथ देना चाहते हैं जो पददलित और निर्यातित हैं। हम ९० फीसदी जनताके ट्रस्टी बनना नहीं चाहते। हम यह नहीं चाहते कि उनमें चेतना उत्पन्न न हो और वह सदा हमारी सहायता-की अपेक्षा करते रहें। हम चाहते हैं कि राज्य-शक्ति जनताके हाथमें आवे। यह तभी हो सकता है जब हम उनका संगठन आर्थिक आधारपर करें और उनमें इस चेतनाको उत्पन्न करें कि राष्ट्रके सच्चे मालिक वही हैं और राष्ट्रका शासन सूत्र उन्हींके हाथमें रहेगा। जिस प्रकार हम दारिद्र दैन्यका अन्त करना चाहते हैं और यह नहीं चाहते कि दरिद्र नारायणकी सेना सदा कायम रहे जिसमें पूँजीपतियोंको अपने पापका प्रायश्चित करने

तथा गरीबोंकी सेवा करनेका सदा अवसर मिलता रहे, उसी तरह हम यह भी नहीं चाहते कि मध्यम-श्रेणीके लोग सदा अधिकारारूढ़ रहें और गरीबोंके सन्तोषके लिये उनके आरामकी थोड़ी बहुत व्यवस्थामात्र करते रहें। लोकतन्त्र तभी स्थापित होगा जब देशके श्रमजीवी किसान और मजदूरोंका राज्य कायम होगा।

यह ठीक है कि किसान और मजदूरोंको संघटित करनेसे हम अमीरोंके क्रोधपात्र बन जायँगे और वह नाना प्रकारके उपद्रव खड़े करेंगे। हम तो जनताको शान्तिमय उपायोंद्वारा ही संघटित करना चाहते हैं। हमारी तो यही कोशिश रहेगी कि किसान और मजदूरोंका समुचित विनयन हो जिसमें वह दूसरोंके उपद्रवका जवाब उपद्रवसे न दें। किन्तु हमारे विरोधी हमारे संघटनके इस उद्योगको श्रेणी-युद्धका स्वरूप देनेकी चेष्टा करेंगे। इसका हमारे पास कोई इलाज नहीं है। हम इतना ही कह सकते हैं कि हमारा सारा कार्य कांग्रेसकी क्रीडके अनुसार होगा।

हिंसा अहिंसा

अब रही हिंसा और अहिंसाकी बात। हमारे इतना कह देनेपर भी कि साम्यवादी दलमें वही लोग सम्मिलित हो सकेंगे जो कांग्रेसके सदस्य हैं, कांग्रेसके कर्णधारोंका समाधान नहीं होता। हम आरम्भमें ही कह देना चाहते हैं कि हम केवल कांग्रेसकी क्रीडसे बँधे हैं। इस क्रीडमें अहिंसाका कहीं भी उल्लेख नहीं है। सारे उचित और शान्तिमय तरीकोंसे पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करना कांग्रेसका ध्येय रखा गया है। वर्किंग कमेटीका कहना है कि हमारे सिद्धान्त (जिनको उन्होंने ठीक ठीक नहीं समझा है) कांग्रेसकी अहिंसाकी क्रीडके विरुद्ध हैं। वह यह नहीं कहती कि

तुम शान्तिमय तरीकोंसे काम नहीं करना चाहते। 'अहिंसा' शब्द हमको प्यारा था किन्तु जब उसके अजब अजब माने लगाये जाते हैं और यह कहा जाता है कि अहिंसा एक आध्यात्मिक वस्तु है, जिसका रहस्य समझनेके लिये आध्यात्मिकताके रंगमें रँगनेकी जरूरत है, जब हमको उसके बारेमें यह बतलाया जाता है कि वह साधारण मनुष्योंकी बुद्धिके परे है और जितना गहरा आप उसमें प्रवेश करेंगे उतना ही अधिक अलभ्य लाभ आपका होगा, तो हमको विवश होकर कहना पड़ता है कि हमको ऐसी अहिंसाकी जरूरत नहीं।

यदि कोई अहिंसाकी गहराईमें प्रवेश करे और उसके सिद्धान्तोंपर चलना चाहे तो उसे एक क्षण भी जिन्दा रहना मुश्किल हो जावेगा। अहिंसाकी सच्ची कल्पनामें शायद किसी प्रकारके भी विरोधको स्थान नहीं है। सम्पूर्ण अविरोधकी भावना ही अहिंसाका मूलमन्त्र है। क्या मैं वर्किंग कमेटीके मेम्बरोंसे पूछ सकता हूँ कि कांग्रेस ब्रिटिश साम्राज्यवादका विरोध करनेके लिये है या नहीं? यदि वह विरोध करनेके लिये है तो यह कहाँतक अहिंसाके सिद्धान्तके अनुकूल है?

यदि हम अपने शास्त्रोंकी परिपाटीका ही अनुसरण करें तो हमको विविध आश्रमोंके लिये अहिंसाके विविध रूप मिलेंगे। गृहस्थका अहिंसा-धर्म संन्यासीके अहिंसा-धर्मसे बिलकुल पृथक् है। हमारे कांग्रेसके महारथी न पुरानी व्याख्याको ही स्वीकार करेंगे और न कांग्रेसके ध्येयसे ही सन्तुष्ट होंगे। वह अपनी निराली व्याख्या ही करना चाहते हैं। और तमाशा यह है कि वह उन सिद्धान्तोंको बतानेकी भी कृपा नहीं करते जिनके आधार-

पर वह अपना फतवा समय समयपर दिया करते हैं। यदि हम उनके कार्यकी ओर दृष्टिपात करें और उसकी सहायतासे उनके अहिंसाके सिद्धान्तको समझना चाहे तो भी हमको एक बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ता है। कठिनाई यह है कि जिस बातको आज वह अहिंसा सम्मत कहते हैं। उसीको कुछ वर्ष पहले वह हिंसा-द्वेष-मूलक बताया करते थे। उदाहरणके लिये, ब्रिटिश मालके वहिष्कारके प्रश्नको ले लीजिये। कांग्रेसमें बराबर इसका यह कहकर विरोध होता रहा कि यह हिंसा और द्वेषमूलक है और इसलिये इसको कांग्रेसके कार्यक्रममें स्थान नहीं मिल सकता। किन्तु आज हम देखते हैं कि ब्रिटिश मालका वहिष्कार एकाएक अहिंसाके सिद्धान्तके अनुकूल माना जाने लगा है। हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि हम राजनीतिक तन्तुओंको ऐसी किसी चीजकी जरूरत नहीं है जिसके अनुसार आचरण करना गृहस्थके लिये सम्भव न हो।

जब हम यह कहते हैं कि पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके उपरान्त विधान सम्मेलन [कोंस्टिटुएन्ट असेम्बली] द्वारा एक ऐसा शासन-विधान तैयार किया जावे जो साम्यवादके सिद्धान्तके अनुकूल हो तो इसमें कांग्रेसके क्रीडका विरोध कहाँ होता है? देशकी नयी व्यवस्था जनताके चुने हुए प्रतिनिधियोंकी रजामन्दीसे की जावेगी और जो परिवर्तन किये जावेंगे वे कानूनद्वारा ही होंगे। यदि इनका कोई वर्ग विरोध करेगा तो राज्यका कर्तव्य होगा कि वह विरोधको शान्त करनेके लिये उचित उपायोंका सहारा ले। यह स्पष्ट ही है कि यह उपाय हर हालतमें अहिंसा-सम्मत न होंगे। स्वराज्य पानेपर कांग्रेस भी अहिंसक नहीं रहेगी क्योंकि

करांचीके प्रस्तावमें यह बात स्पष्ट रूपसे कही गयी है कि राष्ट्रकी रक्षाके लिये सेनाके अलावा एक मिलीशिया भी रहेगी और प्रत्येक नागरिकको युद्धकी शिक्षा दी जावेगी। दूसरे स्थलपर यह भी कहा गया है कि यदि किसीकी सम्पत्ति जब्त की जावेगी तो वह कानूनके अनुसार ही की जावेगी। इसका आशय यह है कि कानूनके अनुसार किया हुआ प्रत्येक कार्य उचित और न्याय्य ठहराया जायगा। यदि ऐसा न हो तो शासनका काम एक दिन भी न चल सके। केवल अराजकताके सिद्धान्तको स्वीकार करने-वाले लोग ही गवर्नमेंट और कानूनकी जरूरतको नहीं मानते। किन्तु कांग्रेसके नेता तो अराजक [अनारकिस्ट] नहीं हैं।

फिर यह कैसे कहा जाता है कि हमारे सिद्धान्त कांग्रेसके ध्येयके प्रतिकूल पड़ते हैं।

'लीडर' पत्रने हमको यह नेक सलाह दी है कि वर्किंग कमेटी-के इस निश्चयके बाद हमलोगोंको कांग्रेससे बाहर आ जाना चाहिये। मैं इस बातको तसलीम नहीं करता कि वर्किंग कमेटी-को कांग्रेसके ध्येयका मनमाना अर्थ लगानेका अधिकार है। जबतक हम कांग्रेसके ध्येयको स्वीकार करते हैं और उसके अनुसार आचरण करते हैं तबतक हमको कांग्रेसके भीतर रहनेका पूरा अधिकार है।

मैंने आरम्भमें ही निवेदन किया था कि वर्किंग कमेटीका जो रुख हमलोगोंकी ओर है उसको समझानेके लिये कांग्रेसकी वर्तमान नीतिकी आलोचना करना आवश्यक है। यह लेख बहुत बड़ा हो गया है, इसलिये अगले लेखमें हम कांग्रेसकी नीतिकी आलोचना करेंगे। आज हम इतना कहना पर्याप्त समझते हैं कि

कांग्रेस जिस नीतिका आज अनुसरण कर रही है वह कांग्रेसके ध्येयकी दृष्टिसे भी अत्यन्त घातक है। साम्यवादकी कथा तो दूर रही, इस चालसे तो कांग्रेस धीरे धीरे खिसककर नरम दलके ध्येय और कार्यक्रमको स्वीकार कर लेगी। यदि कांग्रेसके कर्णधार हमलोगोंको कांग्रेससे निकालना चाहते हैं तो उनको कांग्रेसके ध्येयको बदलवाना चाहिये। यदि कांग्रेसका ध्येय बदलकर उत्तरदायी शासन अथवा डोमिनियन स्टेटसकी प्राप्ति हो जावे तो हम स्वयं कांग्रेससे पृथक् हो जावेंगे। उस समय लिबरल भी कांग्रेसमें शरीक हो सकेंगे और मध्य-श्रेणीके लोगोंको मिलानेकी नीति भी सफल हो जावेगी तथा साम्यवादका भूत जो उनको आज परेशान कर रहा है वह उनका होकर उनको परेशान न कर सकेगा।

फासिज्मका वास्तविक रूप

[लेखक—आचार्य नरेन्द्रदेव जी]

पूँजीवादके ह्रासका युग

पूँजीवादके लिये ह्रास और अवनतिका युग है। यों तो पूँजी-प्रथामें संकटका काल समय समयपर बराबर उपस्थित होता आया है, क्योंकि ऐसा होना पूँजी-प्रथाके लिये

अनिवार्य है, पर जो संकट १९२९ में आरम्भ हुआ, वह जल्द टलता नजर नहीं आता। हो सकता है कि भगीरथ प्रयत्न करनेपर सम्पत्की अवस्था कुछ दिनोंके लिये फिर लौट आवे, पर अन्तमें इसका फल यही होना है कि निकट भविष्यमें यह संकट और भी भीषण रूप धारण करेगा। उस समय यदि पूँजी-प्रथाके आन्तरिक विरोधोंको मिटानेका प्रयत्न न किया गया तो वर्तमान सभ्यताका निश्चय ही अन्त हो जायगा और संसारका एक बड़ा हिस्सा अनिश्चित कालके लिये अंधकार और बर्बरताके खड्डेमें जा गिरेगा।

नयी मशीनोंकी सहायतासे पैदावारको अपरिमित रूपसे बढ़ानेका खूब मौका मिला। आपसकी प्रतिस्पर्धाके कारण मुनाफा कमानेके लिये पूँजीपतियोंने आवश्यकतासे अधिक माल तैयार कर दिया। इसका फल यह हुआ कि मशीनका माल नहीं बिक सका और व्यापारमें संकट उपस्थित हो गया। कारखानोंको बन्द कर देना पड़ा, कारखानेदारोंका दिवाला निकल गया और मजदूरोंकी बेकारी बढ़ने लगी। कुछ दिनोंमें गोदामोंका भरा माल बिक गया, धीरे धीरे बन्द कारखाने फिर खुलने लगे, मजदूरी बढ़ी और व्यापार फिर तेजीसे चलने लगा। किन्तु यह अवस्था बहुत दिनोंतक कायम न रही। फिर वही रफ्तार बेढंगी शुरू हुई। प्रत्येक कारखानोंमें अपरिमित मात्रामें माल तैयार होने लगा। बाजारमें मंदी हो गयी। खरीदारोंकी कमीसे माल फिर गोदामोंमें इकट्ठा होने लगा। यह दौरा बराबर चलता रहा। सम्पत् और विपत्की अवस्थाएँ ५-७ वर्षका अन्तर देकर बराबर उपस्थित होती रहीं।

आर्थिक संकटकी दवा समाजवाद

यद्यपि आरम्भमें बड़े पैमानेके व्यवसायने ही अबाधित स्पर्धाको जन्म दिया था तथापि अब उसकी आवश्यकता नहीं रह गयी है। व्यवसायकी आवश्यकताओंको बिना बिचारे उत्पादन-को क्रियाको बढ़ाते चले जानेका यही फल है। उत्पादन-शक्ति अब इस दर्जेतक बढ़ गयी है कि पूँजी-प्रथाका उसके साथ सामंजस्य नहीं रह गया है। पूँजीप्रथामें उत्पादन-शक्तिकी अब और उन्नति नहीं हो सकती। जबतक बड़े पैमानेका व्यवसाय वर्तमान पद्धतिके अनुसार सञ्चालित होता रहेगा तबतक मानव सभ्यताको भय बना रहेगा, मजदूरोंका कष्ट बढ़ता रहेगा तथा साथ साथ पूँजीपति भी बरबादीसे न बच सकेंगे। दो ही उपाय हैं या तो व्यवसायकी इस नयी पद्धतिका अंत कर दिया जाय या समाजकी एक नयी व्यवस्थाकी जाय जिसमें बड़े पैमानेका व्यवसाय फल-फूल सके और अपने आन्तरिक विरोधोंसे छुटकारा पा सके। जो नयी सामाजिक व्यवस्था होगी, उसमें कारखानेदार न होंगे जो आपसमें प्रतिद्वन्दिता करें। उस नयी व्यवस्थामें एक निश्चित योजनाके अनुसार तथा समाजके सब सदस्योंकी आव-श्यकताके अनुसार औद्योगिक उत्पादन होगा। प्रतिद्वन्दिताके स्थानमें सहयोग होगा। बिना विचारे व्यक्तिगत लाभके लिये जो काम दैवाधीन हो रहा है, उसके स्थानमें बुद्धि पूर्वक तैयारकी हुई एक योजनाके अनुसार कार्य होगा। यह व्यवस्था समाजवाद-की व्यवस्था है। मानव समाजको दारुण परिणामसे बचानेका यही एकमात्र उपाय है। पूँजीप्रथा विकासकी उस चरम सीमाको पहुँच गयी है, जहाँ वह उत्पादनकी वृद्धिमें रुकावट डालती है।

पूँजीप्रथा अपना काम समाप्त कर चुकी है, समाजकी भावी उन्नति-के लिये इस प्रथाका लोप आवश्यक है। पूँजीप्रथाकी मर्यादित सीमाके भीतर उन्नतिकी अब कोई गुंजाइश बाकी नहीं है।

पूँजी और पूँजीपति

अबतक यही समझा जाता रहा है कि यह व्यापार-संकट तथा औद्योगिक शक्तियोंका यह प्रपञ्च और अपव्यय अनिवार्य है, क्योंकि बाजारोंके हेर फेरसे तथा अचिंत्य कारणोंके वश अथवा युद्ध, दुष्काल या आर्थिक आपदासे ऐसा होता है। किन्तु अब यह बात स्पष्ट हो गयी है कि व्यवसाय, कृषि, व्यापार, गमनागमनके साधन तथा यंत्रोंमें जो असाधारण उन्नति हुई है उसके कारण उत्पादनकी शक्तियोंमें इतनी अधिक वृद्धि हो गयी है कि जितना माल तैयार किया जा सकता है उतना इसलिये नहीं तैयार होता कि वह ऐसी कीमतपर नहीं बेचा जा सकता, जिसमें लागत भी निकल आवे और मुनाफा भी बना रहे। इसीलिये आज अनेक कृत्रिम उपायोंसे वस्तुओंकी कीमत बढ़ानेका उद्योग किया जाता है; कारखाने बन्द कर दिये जाते हैं, मजदूरोंको छुट्टी दे दी जाती है, अन्न आदि वस्तुएँ नष्ट कर दी जाती हैं और उत्पादनको नियं-त्रित करनेके लिये प्रयत्न किये जाते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि कुछ राजनीतिज्ञ और अर्थशास्त्री इस गम्भीर अवस्थाके लिये उन राजनीतिक तथा आर्थिक कठिनाइयोंको जिम्मेदार ठहराते हैं, जो युद्धके बाद पैदा हो गयी हैं। कर्जका बोझ, टेरिफ-युद्ध, पुराने सुप्रतिष्ठित बाजारोंका बन्द हो जाना तथा आत्मनिर्भरताके भावका प्राबल्य यह सब बातें पूँजीप्रथाके

संहारके मुख्य कारण नहीं हैं, किन्तु एक अनिवार्य रोगके ऐसे लक्षण हैं, जो रोगका उद्दीपन करते हैं।

पूँजीपतियोंमें जो दूरदर्शी हैं वह साफ देखते हैं कि यदि वह अपने मुनाफेको सुरक्षित रखना चाहते हैं, तो उनके लिये सिवाय इसके दूसरा चारा नहीं है कि वह स्वयं योजनाके अनुसार राष्ट्रके आर्थिक जीवनका संघटन करें। कमसे कम, व्यापारके प्रत्येक क्षेत्रमें प्रभावशाली व्यापारियोंने इस बातको मान लिया है कि यदि रोजगारमें मुनाफा कमाना है तो उत्पादनकी शक्तियोंको सिमिति और नियंत्रित करना पड़ेगा। बिना इस सिद्धान्तको सामान्य रूपसे स्वीकार किये हुए ही कई व्यवसायोंमें स्पर्धाको रोकनेका प्रबन्ध किया गया। व्यवसायियोंने आपसमें पैदावार तथा कीमत निर्धारित करनेके लिये समझौते किये और एक समझौतेके आधारपर बाजारोंका बँटवारा कर लिया। कभी एक देशके भीतर एक व्यवसायके विविध कारखानेदार आपसमें तसफिया कर लेते थे और कभी अन्तर्राष्ट्रीय समझौते भी होते थे। अपने वर्गके स्वार्थोंकी रक्षाके लिये एक सामान्य नीतिका अनुसरण करना पूँजीपतियोंके लिये आवश्यक हो गया है किन्तु ऐसा होना सम्भव नहीं है; क्योंकि बड़े बड़े व्यापारियोंके लिये अपने व्यापारपर अपना अक्षुण्ण अधिकार छोड़ना दुष्कर है और सबके लिये राष्ट्रीय आधारपर व्यवसाय योजनाकी आवश्यकता समझना भी असम्भव है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक स्पर्द्धा

पूँजीपद्धतिके अनुसार सङ्गठित राष्ट्रोंके लिये व्यवसायका क्षेत्र दिनपर दिन संकुचित होता जाता है। दुनियाका बँटवारा हो

गया है। उपनिवेशोंमें भी व्यवसायकी उन्नति होती जाती है। इससे संसारका बाजार इन औद्योगिक राष्ट्रोंके लिये संकुचित होता जाता है। इसलिये जबतक इन राष्ट्रोंकी स्पर्धा पूर्णरूपसे जारी रहती है, तबतक व्यवसायमें मुनाफेपर पूँजी लगानेके लिये अवसर कम होते जाते हैं। यह अवस्था तभी सुधर सकती है, जब एक नये आधारपर प्रमुख पूँजीवादी राष्ट्र संसारके व्यवसाय और बाजारका बँटवारा कर लें। किन्तु पूँजीप्रथामें यह सम्भव नहीं है। अवस्था इसके सर्वथा प्रतिकूल है। संसारका व्यापार जितना ही अधिक सिकुड़ता है, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध जितने ही अधिक अव्यवस्थित होते हैं, उतना हो अधिक विविध राष्ट्र एक आर्थिक युद्धके लिये अपनेको शस्त्रोंसे सुसज्जित करते जाते हैं। प्रत्येक राष्ट्र अपने आर्थिक जीवनकी रक्षाके लिये तैयारी कर रहा है। प्रत्येक राष्ट्र अपनेको आत्मनिर्भर करना चाहता है। वह नये बाजार और नये प्रदेशकी तलाशमें है। वह अपने देशसे दूसरोंके व्यवसायको निकालना चाहता है। जिन क्षेत्रोंमें वह स्वयं पिछड़ा हुआ है उनमें वह उन्नति करना चाहता है। इससे राष्ट्रीयताकी भावनाको उत्तेजना मिलती है। पूँजीप्रथाकी वर्तमान आवश्यकताओंके कारण इस भावनाको उत्तेजना देने की जरूरत है। किन्तु यदि प्रत्येक राष्ट्र इस नीतिका अनुसरण करे तो आन्तर्राष्ट्रीय अव्यवस्था और अस्तव्यस्तता और भी बढ़ जावेगी।

फैसिज्म क्या है?

वास्तवमें पूँजी-प्रथाका कार्य समाप्त हो चुका है। इसने संसारका बाजार और संसारव्यापी एक आर्थिक पद्धति कायम कर दी है। उसके आन्तरिक विरोध विकसित हो गये हैं अब वह केवल

प्रतिक्रियाकी पद्धति होकर ही रह सकती है। यही प्रतिक्रिया फैसिज्म है।

संसारकी आर्थिक पद्धतिका विघटन हो रहा है। राष्ट्र अब आर्थिक युद्धकी तैयारीमें लगे हैं। राजनीतिक रूपमें उसीका प्रतिफल फैसिज्म है। जबसे पूँजीप्रथाका ह्रास होने लगा है, तभीसे प्रत्येक पूँजीवादी राष्ट्रमें फैसिस्ट आन्दोलनके विकासके लिये कमोबेश अनुकूल अवस्था रही है।

फैसिस्ट राज्य आर्थिक राष्ट्रीयताकी ओर झुक रहे हैं। वह व्यवसायकी दृष्टिसे स्वतन्त्र होना चाहते हैं। इस मामलेमें आत्मनिर्भरता प्राप्त करनेकी उनकी चेष्टा रहती है। इस प्रकार वह संसारकी आर्थिक पद्धतिको विघटित कर देते हैं। साथ साथ अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध भी विघटित हो जाते हैं और संसारका व्यापार नष्ट हो जाता है।

इस पद्धतिके द्वारा ही पूँजीवादी देशोंका उत्थान हुआ है। इस पद्धतिके विनाशसे, उनके जीवनका परम आवश्यक आधार नष्ट हो जाता है। इसलिये उनकी प्रतिद्वंदिता और भी भीषण हो जाती है। फैसिज्मके बढ़नेसे राष्ट्रोंके आपसके विरोध और भी तीव्र हो जावेंगे। जो राष्ट्र आज फैसिस्ट नहीं हैं, उनको भी युद्धकी नीति अपनानी पड़ेगी तथा फैसिज्मकी ओर अग्रसर होना पड़ेगा। फैसिज्ममें उन्नतिके लक्षण नहीं हैं। यह पूँजी-प्रथाके ह्रास और अवनतिको और भी बढ़ाता है। पूँजीप्रथाको जीवित रखने की यह अन्तिम चेष्टा है।

इटलीमें फैसिस्ट पार्टीको अपना अधिनायकत्व जमानेमें कुछ साल लग गये थे। पर जर्मनीके नाजी दलने वही काम

चन्द महीनोंमें ही कर डाला। जर्मनीके सामने इटलीका नमूना तैयार था। जर्मनीमें जहाँ समाजवादी तथा कम्यूनिस्ट दल सुसङ्गठित थे फैसिज्मकी स्थापनाका एक प्रधान कारण यह रहा है कि वहाँके पूँजीपतियोंने इस बातकी आवश्यकताको महसूस किया कि यदि पूँजीप्रथाको जीवित रखना है तो पूर्व इसके कि समाजवादी समाजकी स्थापना करें, उन्हें व्यवसाय योजनाका काम अपने हाथमें लेना चाहिये। उनको इसका वास्तविक भय था कि यदि वह ऐसा नहीं करेंगे तो रूसकी तरह उनका भी हाल होगा। फैसिस्ट आन्दोलनके मूल आधार मध्यम वर्गकी निम्न श्रेणीके वह लोग हैं जो कङ्गाल हो गये हैं। युद्धके बाद जो मार्क (जर्मन सिक्का) का भाव गिर गया था, उससे यह लोग तबाह हो गये थे। १९२९ की मन्दीने इनको और भी बरबाद कर दिया। यही समुदाय फैसिस्ट आन्दोलनका मूल आधार बना।

फैसिज्मका वास्तविक रूप

जिन राष्ट्रोंमें अभी फैसिज्म स्थापित नहीं हुआ है, वहाँ भी फैसिज्म-प्रवृत्तिको उत्तेजना मिली है। इङ्गलैण्डमें मास्लेका गिरोह है। स्विटजरलैण्डमें 'डाइफ्रांटेन' दल है। फ्रांस, बेलजियम स्वीडन आदि देशोंमें भी इसी प्रकारके सङ्गठन पाये जाते हैं। संयुक्तराष्ट्र अमरीकामें रूजवेल्टकी योजना धीरे धीरे फैसिज्मके लिये जमीन तैयार कर रही है।

जर्मनीका नात्सी दल

इन नवीन विचारोंकी सफलता देश और कालपर निर्भर करती है। यह छोटे छोटे समुदाय बहुत दिनोंतक इसी अवस्थामें रह सकते हैं, पर यदि आर्थिक और सामाजिक अवस्था फैसिज्म-

के अनुकूल हुई, समाजवादी जनताके विश्वासपात्र न रहे तथा जनतामें एक राष्ट्रवादी अधिनायककी चाह पैदा हुई तो यह छोटे छोटे समुदाय एक बृहत् दलके आरम्भक बन सकेंगे।

यह प्रतिक्रिया बहुत दिनोंतक चल सकती है, यद्यपि यह भी असन्दिग्ध है कि इसका अन्त समाजवाद करेगा। जर्मनोंके फैसिस्ट बहुत मजबूत हैं। उनके पास केवल राजशक्तिके ही सब साधन नहीं हैं, किन्तु प्रचारके भी सब साधन हैं—छापाखाना, कला, विज्ञान, सब तरहके क्लब, असोसियेशन, आर्थिक और सामाजिक सङ्गठन, चर्च इत्यादि। संक्षेपमें समस्त राजनीतिक तथा बौद्धिक जीवनके सङ्गठित रूप, फैसिस्ट पार्टीको मजबूत बनानेके काममें जानबूझकर बेदर्दीसे लगाये जाते हैं। अन्य दलोंका अन्त कर दिया गया है। जनताके पास सङ्गठनके जो साधन थे वह भी छीन लिये गये हैं। उनका सामूहिक जीवन छिन्न भिन्न कर दिया गया है। फैसिस्ट स्टेटमें मजदूरोंको संभ्रम समुत्थानका अधिकार नहीं है। मजदूरोंका कोई स्वतन्त्र सङ्गठन नहीं है। जिन मजदूर सङ्गठनोंकी इजाजत दे रखी है उनमें मजदूरोंको फैसिस्टोंने परस्पर सलाह करनेकी स्वतन्त्रता नहीं दी है और यह सङ्गठन मजदूरोंके नियन्त्रण या प्रभावमें नहीं है। मजदूरोंको केवल चन्दा देना पड़ता है। फैसिस्ट पूँजीपतियोंसे कामके बारेमें शर्तें तय करते हैं और पीछे यह घोषणा करते हैं कि यह तसफिया मजदूरोंके हितमें किया गया है। ऐसी हालतमें जबतक एक काफी सुदृढ़ और अनुभवी सङ्गठन प्रस्तुत न होगा तबतक फैसिस्ट शासनका सफल विरोध जर्मनीमें नहीं हो सकेगा।

इसके अतिरिक्त आक्रमणका सुअवसर तभी प्राप्त होगा जब

फैसिस्ट शासन आन्तरिक तथा बाह्य कठिनाइयोंके कारण काफी दुर्बल हो जायगा और जनता उसके विरुद्ध हो जायगी। सङ्कटके समय अवश्य आवेंगे, बेकारीके घटानेकी जो चेष्टा फैसिस्ट कर रहे हैं उससे स्थायी रूपसे बेकारी नहीं दूर हो सकती। यदि विदेशी मामलोंमें फैसिस्ट स्टेटको दिक्कतें पड़ें तो एक महान् सङ्कट उपस्थित हो सकता है। किन्तु इसका उपयोग तभी हो सकता है जब जर्मनीके समाजवादी और कम्यूनिस्ट कार्यकुशलताका परिचय दें और अपनी एक नीति निर्धारित कर समवेत रूपसे कार्य करना आरम्भ कर दें।

फैसिज्मका विकास

फैसिस्ट आन्दोलनके अभ्युत्थानके लिये परिस्थिति अनुकूल थी। संसारके सब भागोंमें आर्थिक जीवन अस्तव्यस्त था। राजनीतिक तथा आर्थिक गुटोंका संघर्ष तीव्र हो रहा था। राजनीति और व्यापारमें पाप बुद्धि बहुत बढ़ गयी थी। मजदूरी गिरती जाती थी। बेकारी बढ़ती जाती थी। नगरोंमें रहनेवाले मध्यम श्रेणीके लोगोंका जीवन भी संशयापन्न था। किसानोंकी भी मुसीबत कुछ कम न थी, क्योंकि खेतोंमें सङ्कटकी अवस्था भी उपस्थित हो गयी थी। इस सामाजिक सङ्कटके कारण दलबन्दी बढ़ गयी थी। विविध दल राजनीतिक अधिकार और प्रभावके लिये संघर्ष करते थे, पर इस मुसीबतसे छुटकारा पानेका रास्ता कोई भी नहीं बताता था।

जो शासन-पद्धति लोगोंको मुसीबतसे बचा नहीं सकती, उसके प्रति उनका विद्वेष बढ़ जाता है। भिन्न भिन्न दलोंकी आपसकी लड़ाईसे वह तंग आ जाते हैं। लोकतन्त्र शासन उनके

विद्वेषका पात्र बन जाता है और वह एक मजबूत आदमीको जरूरत महसूस करने लगते हैं, जो राष्ट्रकी ठीक ठीक व्यवस्था करे। लोगोंका यह ख्याल होने लगता है कि व्यवसाय, व्यापार, राजस्वकी हीन अवस्था, बढ़ती हुई बेकारी, आर्थिक और राजनीतिक गड़बड़, यह सब लोकतन्त्र शासनकी दुर्बलताओंके परिणाम हैं। वास्तवमें पूँजी-पद्धतिका जो संकट है, वही लोकतन्त्र शासनके लिये जिम्मेदार है।

जब वह देखते हैं कि पूँजी-प्रथाके सूत्र धीरे धीरे थोड़ेसे गुटोंमें कन्द्रीभूत होते जाते हैं और पूँजीप्रथामें स्वाधिकार बढ़ता जाता है, जब वह देखते हैं कि बड़े बड़े ट्रस्ट और व्यवसायके डाइरेक्टरोंका व्यक्तिगत प्रभाव वास्तविक है, तब व्यवसाय तथा बंकोंके बादशाहोंके गुटसे उनमें यह भ्रम फैलता है कि अधिनायकों (डिक्टेटर्स) के द्वारा शायद त्राण सम्भव हो, शायद उनके नेतृत्वमें वह संकटकी अवस्थाको पार कर सकें। यही कारण है कि नात्सियोंकी पाशविक बर्बरता और अत्याचारको जनताने उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा।

समाजवादी तथा कम्यूनिस्टोंकी भूलसे भी नात्सी दलने लाभ उठाया। जब जर्मनीमें समाजवादकी उन्नति हुई थी, तब साजवादियोंने अपने शत्रुओंको पूर्ण रूपसे पदच्युत नहीं किया था। सेनापर पुराने फौजी लोगोंका आधिपत्य था। व्यापार-व्यवसाय पूँजीपतियोंके हाथमें था। इसके अतिरिक्त समाजवादी तथा कम्यूनिस्ट दल बराबर आपसमें लड़ते रहे। इन्होंने एक साथ मिलकर नात्सियोंका मुकाबला नहीं किया।

मालिककी दृष्टिमें नौकर बैलके समान

नौकरोंका पेट काटकर पूँजी जमा की जाती है

इलाज—समाजवाद, संघटन और स्वराज्य

मैं आपके विचारसे बिलकुल सहमत हूँ कि आपलोगोंकी हालत एकसी ही है, चाहे आप रोजगारमें लगे हों। मैं ऐसा क्यों समझता हूँ इस बातको भी संक्षेपमें आपके सामने रख देना चाहता हूँ। पहली बात तो यह है कि आपलोग 'कर्मचारी' हैं। 'कर्मचारी' तो बड़ा मीठासा शब्द है। यह नाम सुननेमें आपको अच्छा लगता होगा पर असली बात तो यही है कि आप नौकर हैं। नौकरका ठीक ठीक अर्थ क्या है इसपर लम्बा विचार करना तो आवश्यक प्रतीत होता है, परन्तु थोड़ेमें इसके मानी समझ ही लेना चाहिये। आपके मालिकोंकी क्या राय है। यह तो जाहिर ही है। वह तो आपको इसलिये रखते हैं कि प्रारब्धने उनको दो ही आँखें, दो ही हाथ, दो ही पाँव दिये हैं। कोई मालिक अपनी एक देहसे न सब जगह रह सकता है, न सब काम कर सकता है। इसलिये उसको सहायकोंकी जरूरत होती है। कपड़े या अनाजका व्यापारी स्टेशनसे बैलपर या बैलगाड़ीपर माल लदवाकर मँगाता है और नौकरके जरियेसे उसे

बिकवाता है। उसके लिये बैल भी जरूरी है और नौकर भी और उसकी निगाहमें दोनोंकी हैसियत भी एक सी ही है। यह दूसरी बात है कि आदमीके साथ अनेक कारणोंसे कुछ सहानुभूति होती है, कुछ जात-बिरादरी, मजहब, कानूनका दबाव पड़ता है, कुछ यह डर भी रहता है कि आखिर आदमीकी बर्दाश्तकी हद होती है। इन बातोंका अवश्य कुछ प्रभाव पड़ता है लेकिन इनको छोड़कर मालिकोंकी मनोवृत्ति यही है, चाहे वह उसे साफ साफ खुद भी न समझते हों और साफ शब्दोंमें कभी भी न कहें, कि उनके लिये काम करनेवाला बैल और काम करनेवाला नौकर दो आवश्यक मशीनें हैं। उनको इतना तो देना ही पड़ेगा कि वह जीवित रहें और तन्दुरुस्त बने रहें ताकि मालिकका काम कर सकें, अगर वह बीमारी या किसी अन्य कारणसे मालिकके कामके न रहें तो वह उन्हें बिना संकोचके बदल या निकाल देगा। जिस तरह मोटरलारी या बैल मालिकके मुनाफेके हकदार नहीं हो सकते उसी तरह नौकरका भी उसमें कोई हिस्सा नहीं है। जो रुपया लगाता है मुनाफेका वही हकदार है, ऐसी मालिकोंकी धारणा होती है। अफसोसकी बात यह है कि प्रायः सारा समाज ऐसा ही मान लेता है। इससे भी ज्यादा अफसोसकी यह बात है कि बहुतसे कर्मचारी, नौकर भी इस तर्कको मंजूर कर लेते हैं। मेरा कहना यह है कि यह बात गलत है।

नफेमें मजदूरका हक

पहले तो यह सवाल उठता है कि जिन मजदूरोंने मालको तैयार किया उनका क्या हक है। पर इस प्रश्नको यहीं छोड़ देता हूँ। दूसरा सवाल जो हमारे लिये यहाँपर इससे ज्यादा महत्व

रखता है वह यह है कि दूकानका मालिक वह रुपया कहाँसे लाया जिससे उसने माल खरीदा। यदि कोई आदमी अपना पेट काटकर कुछ बचा ले तो वह तो शायद यह कह सकता है कि यह बचतका रुपया मेरा है, पर जो लखपती है, जिसके पास बिना पेट काटे रुपया बचता है, वह तो ऐसा नहीं कह सकता। हमको देखना होगा कि यह रुपया कहाँसे आया। इस सवालका जवाब हमको उस वक्त मिलता है जब हम इसपर गौर करते हैं कि मुनाफा कैसा होता है। मान लीजिये कि किसी दूकानपर मालिकके साथ दो तीन नौकर हैं। मान लीजिये दूकानपर किसी दिन ५००) का माल खर्च काटकर ५५०) में बिका। यह ५०) मुनाफा हुआ। अब सोचिये कि ५००) का ५५०) कैसे हो गया। मालिक साहब यदि एक कमरेमें ५००) या ५००) के मालके साथ बन्द कर दिये जायँ तो १ दिन क्या १ युगमें भी उस ५००) के लड़के बच्चे नहीं होंगे। मालके लिये माँगका होना तो जरूरी है पर खाली माँगसे ५००) से ५०१) भी नहीं हो सकता, मालको बेचना होगा अर्थात् उसके साथ मिहनत करनी होगी। यह श्रम ही ५००) को ५५०) में बदलता है, पर श्रम अकेली मालिकका नहीं है, उसके नौकरोंका भी है। इसलिये यह ५०) तो इन सब आदमियोंके श्रमसे पैदा हुआ है इन सबमें बराबर बँटना चाहिये। हाँ, यदि किसीने कम किसीने ज्यादा शरीर या दिमागसे मिहनत की हो तो उसी हिसाबसे हिस्सेमें कमी-बेशी होनी चाहिये। पर यह बात साफ तरहसे समझ लेनी चाहिये कि मुनाफा रुपयेमेंसे नहीं टपका, मिहनतसे पैदा हुआ, इसलिये मिहनत करनेवालोंका उसपर हक है, रुपया लगानेवालेका नहीं। वह अपने श्रममात्रके

हिसाबसे उसमें हिस्सा पानेका अधिकारी है। पर बटवारा इस तरह होता नहीं। उस ५०) मेंसे शायद ही कोई नौकर ।।।), १) से ज्यादा पाता होगा क्योंकि शायद ही किसीकी तनखाह ३०) ४०) से ज्यादा होती होगी। बाकी ४०), ४५) मालिककी जेबमें जाता है और उसका मुनाफा कहलाता है। जो रुपया नौकरोंका पेट काटकर जमा होता है उसपर अधिकार उनका नहीं बल्कि मालिकका होता है। उसी रुपयेको वह अपनी पूँजी कहता है और इसीसे नया माल खरीदकर इसी तरह और मुनाफा बटोरता है। यह बात सभी रोजगारोंके लिये लागू है। मालिक लोग एक ओर अपने नौकरोंको लूटते हैं, दूसरी ओर सारे समाजके साथ अन्याय करते हैं। सभी लोगोंके दिये हुए टैक्सके रुपयेसे फौज, पुलिस और अदालतकी व्यवस्था होती है और सड़क, रोशनी वगैरहका प्रबन्ध होता है। बिना इन बातोंके व्यापार नहीं हो सकता। अतः समाज मुनाफेमें हिस्सेदार है पर ऐसा शायद ही कोई दूकानमालिक होगा—मैंने तो आजतक किसीका भी नाम नहीं सुना—जो शौकसे समाजके हिस्सेके नाते सरकारी इन्कम टैक्सका म्युनिसिपलिटीके टैक्सोंको देता है।

थोड़ेमें इस सारे कहनेका तात्पर्य यह है कि जो रकम तनखाहके नामसे आपको दी जाती है वह उससे बहुत कम है जिसको आप पैदा करते हैं और जो आपको मिलनी चाहिये। इतना ही नहीं, आपको अपनी मिहनतकी उचित मजदूरी भी नहीं मिलती और मालिकोंको मिहनतसे कहीं अधिक मजदूरी मिलती है।

रामराज्य और साम्यवादी

लेखक—श्री सम्पूर्णानन्द जी

हिन्दू लोग रामचन्द्रजीको मर्यादा पुरुषोत्तम और उनके शासन, रामराज्यको आदर्श शासन व्यवस्था मानते हैं। रामचन्द्रजी न केवल हिन्दुओं, वरन् समस्त भारतीयोंके, गौरवकी सामग्री हैं। जो लोग उनको अवतार और उपास्य बुद्धिसे नहीं देखते वह भी उनके चरित्रके अनेक अङ्गोंको आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। इसमें भी सन्देह नहीं कि रामचन्द्रजीका समय आर्योंके इतिहासका बड़ा ही उज्ज्वल अध्याय रहा होगा। उन्हींके नेतृत्वमें आर्य जातिने दण्डकारण्य निवासी बानर जातिको अपने संरक्षणमें लेकर उसकी सहायतासे विपुल-बल वैभवशाली राक्षस साम्राज्यपर विजय पायी थी। रामचन्द्रजीकी शासन व्यवस्था भी उस समयके आदर्श और उस समयकी परिस्थितिके अनुसार बहुत श्रेष्ठ रही होगी। सम्भवतः हम आज भी उससे बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं और जब भारतीय आधारोंका अध्ययन करके भारतका इतिहास विस्तृत रूपसे लिखा जायगा उस समय ऐसा कर भी सकेंगे। इतना तो हर निष्पक्ष समझदार मनुष्य मान लेगा। पर कुछ लोगोंके लिए इतना पर्याप्त नहीं है। वे इससे आगे जाते हैं और देशको भी आगे ले जाना चाहते हैं। वे हमको यह बतलाते हैं कि हमको इस समय अपने

देशमें रामराज्य स्थापित करना है, उसीको अपना लक्ष्य बनाना है। यह बात केवल ऐसे लोग नहीं कहते जो जगत् गतिसे अनभिज्ञ हैं, वरन् कभी-कभी ऐसे लोगोंके मुँहसे भी ऐसी बात निकलती है जिनसे तुलनात्मक राजनीतिक ज्ञानकी आश की जा सकती है।

जब महात्माजी रामराज्यका जिक्र करते हैं तो हमको विशेष चिन्ता नहीं होती; क्योंकि हम अभीतक यही समझते हैं कि उनकी परिभाषामें रामराज्यका अर्थ सम्यग्रूपेण सुव्यवस्थित राज्य है। पर सम्भव है उनके शब्दोंको सुनकर कुछ लोगोंको यह शंका होती हो कि हम वस्तुतः कालगतिको उलटकर श्रीराम कालीन व्यवस्थाको पुनः लाना चाहते हैं। यदि यह शंका किसीको होती है तो भ्रान्तिमलूक है। पर, इसपर विचार करनेके पहले हमको यह भी जान लेना चाहिये कि रामराज्य कैसा था। इसको जाननेकी हमारे पास पर्याप्त सामग्री नहीं है। फिर भी लोगोंने उसका कुछ न-कुछ चित्रण किया है। अभी हालमें हमने 'कल्याण' में श्रीरामदास गौड़का 'रामराज्यका आदर्श' शीर्षक लेख देखा है। उसमें रामराज्यका स्वरूप दिया गया है। लेख क्या है, गद्य काव्य है। सोनेकी अटारियाँ, सोने चाँदीके कलश, मूँगोंकी देहरी, स्फटिकके आँगन, मणियोंके दीपक, संगमर्मरके महल— ये चीजें तो गली गलीमें मारी फिरती थीं। नहर और कुओंकी जरूरत न थी, समयपर बादल आपही बरस जाते थे। सुन्दर और विस्तृत बाजार थे और उसमें अन्न वस्त्र, परचून आदि सभी प्रकारकी दूकानें थीं, जिनमें माल भरा था। पर बिक्री न होती थी। लोग आते थे, और अपनी-अपनी आवश्यकतानुसार सामान उठा ले जाते थे। कृषक और जुलाहे आदि कारीगर भी बिना

दामलिये ही दूकानदारोंके यहाँ अन्न वस्त्रादि पहुँचा जाया करते थे। यह क्यों ? इसलिये कि लोग उस समय शास्त्रनिष्ठ थे और अपने-अपने वर्ण धर्म्मोंका कर्त्तव्य बुद्धिसे पालन करते थे। वैश्योंका वर्ण धर्म्म है 'कृषि वाणिज्य गोरक्षण:'; इसलिये उनके लिये दूकान लगाना अनिवार्य था। श्रमिक या मजदूर अपने शौकसे मजदूरी करता था, 'उसे परिचर्यामें रस आता था,' 'वह मजदूरी लेनेको तय्यार न था।' वर्णव्यवस्थाकी मर्य्यादाका पालन होता था; पर अस्पृश्यताका रोग न था। 'शूद्रोंके लिये नदीपर अलग घाट न थे।' 'आजकलके कूपमण्डूक-बुद्धिवाले समझते हैं कि हमने प्रकृत पर प्रभुत्व पा लिया है' पर उस समय इस प्रकारके प्रभुत्व और आजकल जैसे यन्त्रोंकी आवश्यकता न थी। सभी योगी और सिद्ध पुरुष थे। ऐसा न होता तो हनुमानजी समुद्र कैसे कूद जाते और संजीवनी बूटी कैसे लाते ? ऐसी ही विलक्षण बातोंसे लेख भरा पड़ा है, यदि यह बातें सच हों, तो फिर यही कहना पड़ेगा, कि रामराज्य सदृश राज्य न हुआ और न होगा। पर यह हमारा दुर्भाग्य है कि बिना पुष्ट प्रमाणके हम इन्हें माननेको तय्यार नहीं हैं। प्रमाण-स्वरूप जो 'बाजार रुचिर न बनइ बरनत वस्तु बिन गथ पाइये' आदि पद्य दिया गया है, उसकी प्रमाणिकता स्वीकार नहीं की जा सकती। रामराज्यसे लाखों वर्ष बाद उत्पन्न हुए किसी हिन्दी कविकी कल्पना इस सम्बन्धमें कोई ऐतिहासिक मूल्य नहीं रखती। वाल्मीकिने, जो रामचन्द्रजीके समकालीन माने जाते हैं, अयोध्याका जो वर्णन दिया है, उससे तो यह नहीं सिद्ध होता कि 'कृषि गोरक्ष्य वाणिज्यम्' का काम बिना पैसा लिये कोरी कर्तव्य बुद्धिसे ही होता था।

मनुस्मृति तो आर्य जातिकी सबसे प्राचीन और प्रामाणिक स्मृति है और आदिमनु द्वारा सत्युगके आदिमें प्रतिपादित हुई थी। वह तो इस मतका समर्थन नहीं करती कि भिन्न वर्णवाले मुफ्त काम करते थे। उससे तथा अन्य स्मृतियोंसे स्पष्ट है कि लोग दूकनदारी, खेती, परिचर्य्या आदि जीविकाके लिये करते थे, इसीलिये यह नियम बनाये गये थे कि आपत्कालमें जब अपने साधारण पेशेसे काम न चले तो उससे उतरे हुए अमुक-अमुक पेशोंसे जीविका चलाए, पर अमुक अमुक पेशोंमें कदापि न जाय। परिचारकोंको भृति देनेका भी आदेश मिलता है। सूद-व्याज लेनेका भी जिक्र आता है। यह बात कैसे मान ली जाय कि त्रेताके अन्तके समयके लोग सत्ययुगसे भी अधिक धार्मिक हो गये थे या, दूसरे शब्दोंमें, स्मार्त धर्मोंका परित्याग कर बैठे थे? ऐसी क्या बात हुई कि षोडश कलायुक्त अवतार श्रीकृष्णके समयमें आर्य्यजाति पतित होकर पुनः स्मार्त धर्मोंपर आगयी और मणि-माणिक्य वाली कारीगरीके लिये उस अनार्य मय दानवकी शरण लेनी पड़ी? हनुमानजी या अन्य व्यक्ति-विशेषमें चाहे जो विभूति रही हो पर सब तो सिद्ध पुरुष नहीं ही रहे होंगे। यदि योगसिद्धिसे ही काम चल जाता था तो फिर पुष्पक विमान किस लिये रक्खा गया था? अतः हम रामराज्यके इस कल्पित और युक्तिसे असंगत चित्रको स्वीकार नहीं कर सकते। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, वह अवश्य अच्छा ज़माना रहा होगा। पर उसका रूप कवि-बुद्धिकी इस सृष्टिसे बहुत भिन्न था।

पर यह बात और भी स्पष्ट रूपसे समझ लेनी चाहिये कि

रामराज्यका वास्तविक रूप चाहे जैसा रहा हो, चाहे वह गौड़जी-के वर्णनसे मिलता-जुलता ही रहा हो, पर हम उसकी पुनः स्थापना के इच्छुक नहीं हैं। गङ्गाकी धारको उलटना सम्भव भी नहीं, श्रेयस्कर भी नहीं है। गौड़जी अपने लेखके अन्तमें कहते हैं, आजका साम्यवाद रामराज्यके ढङ्गोंका अनुकरण करना तो चाहता है; परन्तु व्यक्तियोंके सम्मुख आदर्श रखनेवाले और पालन करनेवाले किसी पुरुषोत्तमको वह अभीतक जन्मा न पाया, इसीलिये साम्यवादसे ऊपरी ढंग ढाँचा तो बनता है परन्तु भीतरसे व्यक्तियोंका विकास होनेकी किसी वादमें सम्भावना नहीं है। वह मूर्ति बना सकता है; परन्तु उसकी प्राण प्रतिष्ठा नहीं कर सकता, उसमें जान नहीं डाल सकता।' इस सारे अवतरणमें एक ही सत्य बात है और वह व्यङ्गके रूपमें कही गयी है। हम स्वीकार करते हैं कि साम्यवादने अबतक कोई पुरुषोत्तम नहीं जनमाया है। आगे जनमानेका दावाभी नहीं करता। पुरुषोत्तम किसी वादके द्वारा जन्माये जा सकते हैं, यह बात पुराणकारोंको भी नहीं सूझी थी। गौड़जीको स्यात् यह पता नहीं है कि बहुत लोग ऐसा मानते हैं कि आदर्श, चाहे वह पुरुषोत्तमका आदर्श हो या किसी अन्य वस्तुका, कभी भी मूर्त नहीं होता। इसलिए वह रामचन्द्रजीको बालि-बध आदि लीलाओंको आदर्शच्युत देखकर उनको भी पुरुषोत्तम माननेको तय्यार नहीं है। फिर जब प्राचीन पद्धति समूचा सत्युग और प्रायः समूचा त्रेता अर्थात् लगभग ३०,२४,००० (तीस लाख चौबीस हजार) वर्षमें एक पुरुषोत्तम जन्मा पायी तो साम्यवाद तो अभी नवजात शिशु है, उसे घबराने-की कोई बात नहीं है। भवभूतिके शब्दोंमें 'कालोह्यनन्तो,

विपुलाश्च पृथिवी'। रहा अवतरणका मूल वक्तव्य कि 'साम्यवाद रामराज्यके ढंगोंका अनुकरण करना चाहता है', यह बात गलत है। हमारी तो धारणा है कि रामराज्यका चित्र खींचनेमें साम्य-वादी सिद्धान्तोंसे सहायता लेनेका प्रयत्न किया गया है। जो कुछ हो, यदि रामराज्यका अर्थ सुव्यवस्था, सब व्यक्तियोंका स्व-स्व कर्त्तव्य पालन, समृद्धि, अनुचित प्रतियोगिताका अभाव, सबकी उचित आवश्यकताओंकी पूर्ति, सहयोग और शान्ति हो तो साम्यवादको यह कहनेमें लज्जा नहीं है कि वह रामराज्य चाहता है। पर वह वस्तुस्थितिको भूला नहीं सकता। त्रेतामें लोग योगी रहे हों या न रहे हों और घर-घर मणिदीप जलते हों या न जलते हों पर आज तो न सब योगी हैं न किसीके पास मणि है। अतः हमको यन्त्रोंसे काम लेना ही होगा और वह भी इस तरह जैसे कि त्रेतावाले न कर सके। हमको यंत्रोंका दानवीय नहीं, मानवीय ढंगसे उपयोग करना होगा। उनका दानवीय उपयोग पूँजीपति कर रहे हैं, साम्यवादी उनको मानवीय बनाना चाहते हैं। साम्यवादी भी चाहते हैं कि लोगोंमें धर्म्मबुद्धि, कर्तव्यबुद्धि जागरित हो। लोग अपनी अपनी वृत्तिका पालन लोकसंग्रह भावसे करें, पर वह कोरी कल्पनाके क्षेत्रमें नहीं विचारता। तर्कसे काम लेता है और मनोविज्ञानको तर्कका आधार बनाता है। जब सब लोग स्वार्थबुद्धि त्यागकर केवल शुद्ध कार्य्यमिति भावसे प्रेरित होकर काम करने लग जायँगे, उस समय सारी सम्पत्ति समष्टि की, उसे राज कहिये या समाज, आपही हो जायगी। गौड़जीके रामराज्यमें भी 'सब सम्पत्ति समाज की थी।' ऐसे निःस्वार्थी कर्तव्य-निष्ठ व्यक्ति पृथक् सम्पत्ति और पृथक् व्यवसाय-

के झगड़ेमें क्यों पड़ेंगे ? फिर पृथक् खेत और पृथक् दूकानोंकी ही क्या आवश्यकता रह जायगी ? सब खेत समाजके, सब कारखाने समाजके, सब भण्डार समाजके, सब अपनी शक्ति भर श्रम करें सब आवश्यकताभर भोग करें। यही तो साम्यवादका सिद्धान्त है, पर उस समय रामराज्यमें यह बात न थी। साम्य-वादी दायविधानको निरर्थक और अनावश्यक बना देना चाहता है। न निजी सम्पत्ति, न बेटोंके लिए छोड़नेकी आवश्यकता। पर रामराज्यमें दायविधान भी चालू था और समाजका संगठन भी निजी सम्पत्तिके आधारपर था। एक ओर निजी सम्पत्ति थी, दूसरी ओर समाजने इस साम्यवादी सिद्धान्तको स्वीकार नहीं किया था कि प्रत्येक-नागरिकका भरण-पोषण राजका अनिवार्य कर्तव्य है। इसीलिये याचक भी मिल जाते थे। हम यह माननेको तैयार हैं कि लोग दान देनेमें बड़ी उदारता दिखलाते रहे होंगे, पर दान देना रोगका उपचार है, उसकी जड़को नहीं काटता। हम जानते हैं कि उस प्राचीनकालमें वर्णव्यवस्थाने वह निन्दनीय रूप धारण नहीं किया था जो आज हमारे सामने है। पर उसमें विद्वेष और असहिष्णुताका समावेश हो गया था। तपस्याका मार्ग दैत्य, दानव, राक्षस तकके लिए खुला था पर उसपर पाँव धरनेके अपराधमें पुरुषोत्तमने अपने हाथों शूद्र मुनिका बध कर डाला। साम्यवाद ऐसी बातको बर्दाश्त नहीं कर सकता। वह किसी जप तपका आदेश नहीं करता; पर यह नहीं मान सकता कि यदि तप अच्छी बात है तो एक व्यक्तिको उसका अधिकार है, दूसरेको नहीं। प्रसङ्गतः, इस कथासे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि शूद्र लोग डण्डेके भयसे परिचर्या करते थे, परिचर्याके रससे नहीं।

इस संक्षिप्त निरूपणसे साम्यवादकी स्थिति साफ हो जाती है। रामराज्य अपने समयके लिए स्यात् अच्छा रहा हो और उसमें कुछ बहुत ही अच्छी बातें रही हों, पर साम्यवादका सिद्धांत उससे अधिक उदार, कम-से-कम बहुतसे अंशोंमें भिन्न आधारों-पर निर्मित है और इस समयके लिए वही उपयुक्त है। साम्यवाद रामराज्य नहीं, साम्यवादी शासन चाहता है।

राष्ट्रीयताके अतिवादसे हानि

[लेखक—श्री सम्पूर्णानन्द]

साम्यवादके विरुद्ध यह बहुत बड़ा आरोप है, कि वह अन्ताराष्ट्रीयताके भावको जगाता और राष्ट्रीयताके भावको दबाता है। यदि यह बात केवल वस्तुस्थितिके वर्णनके रूपमें कही जायतो किसी भी साम्यवादीको शिकायत न होनी चाहिये क्योंकि बात सत्य है; पर यदि आरोपकी सूरतमें उपस्थित-की जाय तो अधिक विचार करनेकी आवश्यकता उत्पन्न हो जाती है। अन्ताराष्ट्रीयता कोई लज्जित होनेकी बात नहीं है,

और न उसका प्रचार करना कोई बुरी बात है। पुराना और सर्वमान्य शास्त्र वचन है—

अयंनिजः परो वेति, गणना लघुचेतसाम्
उदार चरितानान्तु, वसुधैव कुटुम्बकम्।

यदि साम्यवाद मानव जातिसे लोभ, प्रतिस्पर्द्धा, द्वेष, ममत्व, परस्वापहरण आदि प्रवृत्तियोंको तनु करके मनुष्योंको लघुचेतससे उदार चरित्र बनाना चाहता है तो वह शास्त्रानुमोदित कर्तव्यका पालन करता है उसके स्वसम्मत उपाय सबको पसन्द हों या न हों; पर उसके उद्देश्य तो सर्वसम्मत होने चाहिये। पर जो लोग साम्यवादपर आक्षेप करते हैं उनकी शिकायत दूसरी ही है। उनका कहना है कि साम्यवादके प्रसादसे जो अन्तर्राष्ट्रीय वृत्ति उत्पन्न होती है वह पराजय स्वरूपा होती है, और आत्मोत्सर्ग भावको मार डालती है। उनके अनुसार अन्तर्राष्ट्रीयता यह सिखलाती है कि चाहे कोई विदेशी अपने राष्ट्रपर आक्रमण करे या अत्याचार करे संस्कृति और सभ्यताको नष्ट कर दे, या कोई प्रबल शक्ति किसी दुर्बल राष्ट्रपर अत्याचार करनेको उद्यत हो पर किसी दशामें भी विरोध न किया जाय। यह ख़याल ग़लत है। यदि अन्तराष्ट्रीयता यह सिखलाती तो वह कबकी आत्महत्या कर चुकी होती। रूसमें साम्यवादका व्यवहारिक प्रयोग हो रहा है पर रूसने अपनी सेनाको बर्खास्त करनेके बदले सुसंयत और सुसज्जित बना रक्खा है। यदि उसकी सीमाको कोई भी विदेशी शक्ति अतिक्रमण करनेका दुष्प्रयास करेगी तो उसका मुकाबिला करनेमें रूस न चूकेगा। साम्यवादी सर्कार की स्थापनाके बाद चार वर्षतक साम्यवादी रूसने राष्ट्रवादी ब्रिटेन और उसके मित्रोंके

प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष आक्रमणका सामना किया था। अतः यह कहना ग़लत है, कि अन्तर्राष्ट्रीयता विरोधियोंके सामने हर हालतमें सिर झुकाना सिखाती है। ऐसा करनेसे तो अन्तराष्ट्रीयताका नाश हो जायगा। अन्तराष्ट्रीयताकी स्थापना और उसकी रक्षाके लिये युद्ध और आत्मोत्सर्ग करनेकी आवश्यकता पड़ेगी। हाँ, यह हो सकता है, कि एक ऐसा दिन आ जाय, कि पृथ्वीके सभी राष्ट्र उन्नत विचारशील हो जायँ, तब युद्धकी जरूरत न रह जाय। आत्मोत्सर्गका अवसर तब भी रहेगा। साम्यवादका ठीक ठीक प्रचार तबतक नहीं हो सकता, जबतक एक राष्ट्र दूसरेको राजनीतिक गुलाम बनाकर उसका आर्थिक रक्तशोषण करता है। इसलिये साम्यवाद पराधीन जातियोंमें राष्ट्रीय भावको भी प्रोत्साहित करना बुरा नहीं समझता। इसी उद्देश्यसे प्रेरित होकर रूसने चीन, फारस और तुर्कीकी सहायता की थी। आज भारत पराधीन है। भारतीय साम्यवादी यह खूब जानते हैं कि जबतक देश स्वतन्त्र न होगा तबतक उसमें साम्यवादका भी प्रयोग नहीं हो सकता। स्वतन्त्र भारत सच्ची अन्तर्राष्ट्रीयताका दृढ़ स्तम्भ हो सकता है, परन्तु परतन्त्र भारत साम्यवादकी प्रगतिका भी अवरोधक है। बलवान राष्ट्रोंकी शक्तिको बढ़ानेवाले भारत जैसे गुलाम देश साम्राज्यवादके प्रबल समर्थक और उसी अंशमें, साम्यवादके प्रबल शत्रु हैं। इसीलिये भारतके साम्यवादी राष्ट्रीयताके भावको आह्वान करते हैं और स्वाधीनताके युद्धमें सम्मिलित होनेको तत्पर हैं। कांग्रेस-साम्यवादी दलका इस उद्देश्यको लेकर जन्म हुआ है। राष्ट्रीयताको साधन बनाकर ही साम्राज्यवादके गढ़का ध्वंस किया जा सकता है और सच्ची अन्त-

राष्ट्रीयता स्थापित की जा सकती है। आवश्यकता केवल इस बातकी है कि मनुष्य शब्दोंका दास न बनकर वास्तविक परिस्थिति-को समझे और उसके अनुसार काम करे।

अन्तर्राष्ट्रीयताकी नींव है परस्पर सहयोग और बिना सहयोगके मनुष्यका कल्याण हो नहीं सकता। आज इस सहयोगका स्थान द्वन्द्व और स्पर्धाने स्वार्थ और लोभने ले लिया है। उसीका यह फल है कि आये दिन भयंकर युद्ध होते हैं और युद्धकी आशंका तो नित्य बनी रहती है। जितना रुपया हवाई जहाज, सैनिक बेड़े, तोप, किले, गोला-बारूद आदिको ठीक रखनेमें व्यय होता है उससे तो राष्ट्रोंका सांस्कृतिक काया पलट किया जा सकता है। जितने मनुष्य सैनिक बनाकर बेकार कर दिये जाते हैं वह अपने अपने देशको, अचल पृथ्वी मात्रकी, उपयोगी सेवा कर सकते हैं। जकातकी दीवारें खड़ी कर दी गई हैं और जिन लोगोंको अन्नवस्त्रादिकी आवश्यकता है उनके पास तक सस्ती चीजें पहुँचने नहीं पातीं। यह झूठा स्वदेशी भाव फैला दिया गया है कि प्रत्येक देशको अपने कामकी प्रत्येक चीज अपने यहाँ पैदा करनी चाहिये, चाहे अपने पास उपयुक्त प्राकृतिक साधन हों या न हों? इसीसे साम्राज्यवाद और दुर्बल-शोषणका उदय होता है। इसीसे युद्ध होते हैं, और देशभक्तिका धोखा देकर करोड़ों निरपराध गरीब, जिनको युद्ध और विजयसे कोई लाभ नहीं हो सकता, बलि चढ़ा दिये जाते हैं। ग़रीब ग़रीब ही रह जाते हैं पर पूँजी पतियोंके जेबमें थैलियाँ भर जाती हैं। तेल, कोयला, लोहा अब बनते नहीं। यह मनुष्य मात्रकी सम्पत्ति हैं, पर आज हम इन्हें खोद-खोदकर लुटाये दे रहे हैं। हमें इसकी चिन्ता नहीं है कि

कल हमारे वंशजोंका काम कैसे चलेगा। होना यह चाहिये था कि सबके हितको ध्यानमें रखकर इनका उपयोग होता। होना यही चाहिये था कि जिस वस्तुके उत्पादनको जहाँ सुविधा होती वह वहीं तैयार की जाती और सब राष्ट्रोंमें आवश्यकतानुसार उसका वितरण होता। होना यह चाहिए था कि शान्ति भङ्ग करने वाला उसका शत्रु समझा जाता और विश्व लोकमत उसे दण्ड देता। यही साम्यवादकी अन्तर्राष्ट्रीयता है। साम्यवाद श्रमिकों को—यह स्मरण रहे कि यह शब्द व्यापक है। जो लोग उत्पादक हैं, ईमानदारीसे परिश्रम करके खाते हैं वह सभी श्रमिक हैं— बतलाता है कि तुम्हारा हित परस्पर सहयोगमें है। तुम अपने साम्राज्यवादी पूँजीपति मालिकोंकी स्वार्थसिद्धिके उपकरण मत बने। झूठे आवेशमें आकर उनकी लड़ाइयोंमें प्राण देकर उनके बलको न बढ़ाओ क्योंकि इसमें तुम्हारी और तुम्हारे सन्तानकी प्रत्यक्ष हानि है। यह उपदेश आजकलकी सरकारको, जो पूँजी॰ पतियोंकी कठपुतलियाँ हैं, बुरा बगता है, इसलिए वह साम्यवा- दियोंको पराजयवादी, अन्तर्राष्ट्रीय, और देशद्रोही कहते हैं।

राष्ट्रीयता पर बहुत जोर देनेके जो परिणाम होते हैं वह हमारे सामने हैं। प्रत्येक राष्ट्र अपने नागरिकोंको यही शिक्षा देता है कि अपने देशके हितको देखो और यह भी सिखलाता है कि और लोग तुम्हारे हितके शत्रु हैं अतः तुम्हें उससे सावधान रहना चाहिए। बालकोंके कोमल हृदयपर द्वेषका चित्र दृढ़ाङ्कित कर दिया जाता है। सब सबके शत्रु हैं और यह सयझते हैं कि दूसरे हमारे स्वत्वोंको हड़प लेनेके लिए मुँह फैलाए बैठे हैं। इस घातक परिस्थितिमें मनुष्यका कल्याण कदापि नहीं हो सकता। इसीका

एक विकृत रूप प्रान्तीयता है जिसका प्रत्यक्ष फल हम देख रहे हैं। भारत एक देश, एक राष्ट्र है यह बात तो देरसे समझमें आती है, भारतके हित भी देरसे समझमें आते हैं, पर प्रान्तीयता व्यापक है। बङ्गाली, पंजाबी, गुजराती, मराठा, यह केवल भौगलिक नाम नहीं हैं। इनके साथ गम्भीर भावावेगें सन्लग्न हैं। उत्सवोंमें, प्रीति सम्मेलनोंमें, नौकरियोंमें, सर्वत्र इनका ध्यान रहता है। राजनीतिके क्षेत्रमें भी इसका गहरा प्रभाव है। गुजराती अङ्गरेजी के अधीन रहना स्वीकार कर लेगा पर मराठेकी मातहती कबूल नहीं कर सकता। बिहारी बङ्गालीसे चिढ़ता है, बङ्गाली मारवाड़ीको विदेशी मानता है। जो लोग अपनेको महाराष्ट्रके नामके सच्चे भक्त समझते हैं, वह महात्माजी तकका कर्तृत्व माननेको तैय्यार नहीं हैं। क्योंकि वह गुजराती हैं। नए सुधार और तो चाहे जो कुछ करें प्रान्तीय स्वाधीनताको बढ़ायेंगे। इसका अर्थ यह है कि प्रान्तीयता, प्रान्तीय विद्वेषको और प्रोत्साहन और विकासका अवसर मिलेगा। वह एक प्रकारसे वही परिणाम पैदाकर सकती है जो अन्यत्र राष्ट्रीयताके अत्याचारसे उत्पन्न हो रहे हैं। ऐसी अवस्थामें साम्यवाद और सच्ची राष्ट्रीयता की, जो सच्ची अन्तर्राष्ट्रीयताके आधारपर ही स्थित हो सकती है, और भी आवश्यकता है अन्यथा भारतकी शक्ति केन्द्रीभूत न हो सकेगी और वह न राष्ट्रीयताके कामका रह जायगा न अन्तर्राष्ट्रीयता के।

साम्यवादसे अनभिज्ञता या चिढ़

[लेखक—श्रीयुत दामोदर स्वरूप सेठ]

हमारे परम मित्र और विद्वान् देशभक्त श्रीनरदेवजी शास्त्री 'वेदतीर्थ'ने गत २० जूनके 'अर्जुन'में 'साम्यवाद ! परधर्मो भयावहः' शोर्षक एक लेख लिखा है। मैंने शास्त्रीजीके लेखको कई बार बड़े ध्यानपूर्वक पढ़ा; परन्तु जितनी बार मैं उसे पढ़ता गया उतना ही मेरा यह सन्देह बढ़ता गया कि क्या यह लेख शास्त्रीजोहीकी जबरदस्त लेखनीसे निकला है ? अनेक बार पढ़नेपर भी मुझे इस लेखमें 'साम्यवाद'के विरुद्ध कोई जबरदस्त दलील ही न मिली, बल्कि जिस तर्कका इस लेखमें प्रयोग किया गया है वह बड़ा कमजोर है और यदि मैं यह कहूँ कि यह तर्क है ही नहीं, तो शास्त्रीजी इस साफगोईके लिये मुझे क्षमा करेंगे। इसका कारण शास्त्रीजीके लेखसे ही प्रकट हो गया और वह यह कि शायद शास्त्रीजीको देश तथा धर्मके अनेक कठिन कार्योंमें फँसे रहनेके कारण 'साम्यवाद' और विशेषकर वैज्ञानिक साम्यवाद'के अध्ययन करनेका समय ही नहीं प्राप्त हो सका—और न आजकलके हिन्दी दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्रोंमें देशके विद्वान् लेखकोंके लेखोंको पढ़नेका सुअवसर ही मिला। एक बात और हो सकती है, कि शायद शास्त्रीजी किसी कारण 'साम्यवाद'

शब्दसे ही इतने अप्रसन्न हो गये हों, कि उन्होंने इस शब्दके असली अर्थको, इस विषयके अध्ययनकी आवश्यकता ही न समझी हो, खैर जो कुछ भी हो। मेरी आत्मा इस दूसरे कारण-को माननेके लिए तैयार नहीं है; क्योंकि मैं शास्त्रीजीसे बहुत कुछ परिचित हूँ। वह बड़े उदार हृदयके विद्वान् हैं और उनके विचार भी इतने अधिक संकुचित नहीं हो सकते, कि वह किसी शब्दसे इतना चिढ़ बैठें; इसलिये मेरी समझमें शास्त्रीजीके इस लेखकी जड़में सम्भवतः पहला ही कारण है। शास्त्रीजीका लेख 'साम्य-वाद'के गहरे अध्ययनपर निर्भर नहीं; निर्भर है इस विषयसे अपरिचित लोगोंके मुँहसे सुनी-सुनायी बातोंपर। जब कभी शास्त्रीजी समय निकालकर इस विषयका अध्ययन करेंगे, तो उन्हें सहजमें पता लग जायगा कि 'साम्यवाद'का अर्थ न तो यह है—सब नाप-तोलकर बराबर एक रंग तथा एक नापका पहिनें और एक प्रकारका बराबर भोजन किया करें। साम्यवादका अर्थ है, कि प्रत्येक मेहनत करनेवालेको उसकी आवश्यकताके अनुसार अन्न और वस्त्र मिले। शिक्षा प्राप्ति, स्वास्थ्य सुधार तथा जीवनको सुफल बनानेकी अन्य सुविधाएँ प्रत्येक स्त्री-पुरुषको समान प्राप्त हों। हर कुटुम्ब और व्यक्तिको उसकी आवश्यकताके अनुसार भूमि भी मिले। धनकी उत्पत्ति, बटवारे और तबादलेके साधनोंपर समाजका, न कि व्यक्ति विशेष या थोड़ेसे व्यक्तियोंका अधिकार रहे।

जब शास्त्रीजी गम्भीरता-पूर्वक विचार करेंगे, तो उन्हें तत्काल ज्ञात हो जायगा कि समाजके वर्तमान ढाँचेमें थोड़ेसे लोगोंको जो सुविधाएँ प्राप्त हैं वह सर्व-साधारणको नहीं हैं। साम्यवाद

निस्सन्देह ऐसे ढाँचेको तोड़-फोड़कर उसके स्थानपर एक ऐसा ढाँचा बनाना चाहता है कि जिससे प्रत्येक मेहनत करनेवाले व्यक्तिको उसकी मेहनतका पूरा फल मिले।

साम्यवाद किसीका घातक नहीं है और न किसीका वह क्षय ही चाहता है। पर हाँ, यदि किसीके सुधारका नाम है, उसका क्षय या नाश, तो फिर बात दूसरी ही है। जब साम्यवाद समाजके सर्व-साधारणको जीवन सुफल बनानेकी पूरी-पूरी सुविधाएँ देना चाहता है, तो वह निश्चय ही उस विशेष श्रेणीके लोगोंके अधिकारोंमें कमी करता है, जो सर्व-साधारणके अधिकारोंको हड़प किये बैठे हैं। समाजके वर्तमान संगठनमें क्या कोई भी न्याय-प्रिय व्यक्ति यह कह सकता है कि एक छोटी-सी श्रेणीके लोगोंने देशकी मेहनत मजदूरी करनेवाले और किसानोंके अधिकारोंको हड़प नहीं कर लिया है—क्या शास्त्रीजीसे यह बात छिपी है कि जमीन्दारी प्रथासे समाजकी नाममात्रको भी सेवा नहीं होती; पर जमीन्दार जमीनपर कड़ीसे-कड़ी मशक्कत करनेवाले किसानका खून चूस लेता है। क्या शास्त्रीजीसे यह भी छिपा है, कि एक मिल-मालिक दिनरात मेहनत करनेवाले मजदूरकी मेहनतसे करोड़ों रुपयोंका लाभ उठाता है, वह उस धनको अनेक प्रकारसे समाज और देशके अहितके लिए अपव्यय करता है; पर मेहनत करनेवालेको न पेटभर खाना मिलता है, न तन ढकनेको कपड़ा। निवास-स्थान तो कहीं-कहीं मिल-मालिकोंके अस्तबलोंसे भी गये गुजरे होते हैं। निशि-वासर मिलमें करोड़ों रुपया पैदा करनेवाला मजदूर न शुद्ध जल पा सकता है और न पवित्र वायु; बीमारीमें उसकी तथा उसके स्त्री-

बच्चोंकी न कोई दवादारू करनेवाला है और न तीमारदारी। पढ़ाई-लिखाई, खेल-कूद और मनोविनोदकी बातोंका जिक्र ही क्या ? समाजकी जो श्रेणी इन तमाम मुसीबतोंका प्रधान कारण है, उसका इस प्रकार प्रबन्ध करना, कि वह ऐसा कारण न पैदा कर सके—कोई पाप है ? यदि शरीरसे सड़े हुए रोगी अङ्गको काट डालना बुरा, बुरा नहीं, बहुत भला है, तो समाजका वह अङ्ग जो धनी, जमीन्दार या पूँजीपतिके नामसे पुकारा जाता है और जो समाजकी किसी प्रकार सेवा तो नहीं करता, बल्कि उसकी उन्नतिको रोकता है, उसमें आलस्य, व्यभिचार, अन्याय और अत्याचारके भयंकर रोग उत्पन्न करता है, क्या समूल काट डालने योग्य नहीं है ? यदि एक अङ्गके काट डालनेसे सारा शरीर स्वस्थ हो जाता है, तो उस अङ्गके नाश या क्षयसे किसीको दुःख होगा ? बहुतसे लोगोंके लाभके लिए थोड़ेसे लोगोंका बलिदान सदा ही एक पुण्य कार्य माना गया है। फिर जैसा ऊपर कहा गया है, साम्यवाद पूँजीपतियोंका नाश भी नहीं चाहता, वह केवल उनसे वह अधिकार और ताकत छीन लेता है, जो मनुष्य-समाजके बहुत अधिक व्यक्तियोंपर जुल्म और सितमके पहाड़ तोड़ता है। वह उन्हें समाजमें बराबरका दर्जा देता है, सबको भाई और सहयोगी बनाता है, मालिक, आका या हाकिम नहीं। अब रहा शास्त्रीजीका यह तर्क कि साम्यवाद थोड़ेसे आंग्ल-शिक्षित लोगोंकी पुकार है, जब साधारण तथा जिनको अभी अंग्रेजीकी गन्ध भी नहीं लगी, उनकी समझमें यह अभी नहीं आ रहा है कि यह साम्यवाद कैसा है। शास्त्रीजीका यह तर्क ऐसा ही है जैसा हमारी गोरी सरकारका। अबतक वह भी यही कहती रही है कि देशको

जनता तथा बे-पढ़े लिखे लोग स्वराज्य नहीं चाहते—यह तो थोड़ेसे अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगोंके दिमागकी खराबी है। बे-पढ़े लिखे लोग चाहे साम्यवाद शब्दका प्रयोग भले ही न करते हों, पर क्या शास्त्रीजी अपनी छातीपर हाथ रखकर यह कह सकते हैं कि यह बे-पढ़े लोग दिनरात जमीन्दारों, महाजनों और पूँजी-पतियोंके अन्याय और अत्याचारसे दम नहीं तोड़ रहे हैं। अब रही अन्दरके साम्यवाद और सबके अन्दर एकसी आत्मा होने-की बात। यह सब संसारको तथा अपने आपको धोखा देनेका तर्क है और कुछ नहीं। जब दिनरात हम अपनी आँखोंके सामने थोड़ेसे लोगोंको अपनेसे करोड़ गुना लोगोंका खून चूसते देखते हैं, तो फिर सबके अन्दर एकसी आत्माकी बात कहना मजाकसे अधिक महत्व नहीं रखती। हजारों वर्षोंसे देशमें ऐसा प्रचार होता आया है और करनेवाले अब भी करते हैं, फिर भी धनियोंने न तो अत्याचार बन्द किये और न गरीबोंके दुःख ही दूर हो सके और न ऐसा होनेकी भविष्यमें ही आशा है। प्राचीन समय अब लौट नहीं सकता। संसारका विकास इस समय दूसरी ओर और दूसरे ढंगपर हो रहा है। रोग अब पैदा हुआ है, हजारों वर्षों-की पुरानी औषधिसे काम नहीं चल सकता। आजसे हजार वर्ष पहले देशकी यह दशा नहीं थी। उस समय साम्यवादकी न आवश्यकता ही थी और न वह फैल ही सकता था। आजकी दुनिया दूसरी है, आज मशीन युग है और उसका इलाज है साम्यवाद। असली—नकली नहीं।

शास्त्रीजीने साम्यवादपर जो सबसे बड़ा आक्षेप किया है, वह यह है कि मजदूर किसानोंके राज्यकी बात कह रहे हैं वह,

जिनको ग्रामोंतक जानेका अवकाश नहीं, जिनको मोटरके बिना सरता नहीं, होटलोंके बिना भोजन अच्छा नहीं लगता।' इस प्रकारका तर्क करते हुए शास्त्रीजी इस बातको भूल जाते हैं कि वर्तमान संसारका विकास किस ढंगसे हो रहा है। ऊपर कहा जा चुका है कि आजकल मशीनयुग है, इस समय अतीतको लौटानेकी बात असम्भवको सम्भव बनानेका प्रयत्न ही समझा जा सकता है। इस मशीन युगमें बैलगाड़ी और पुरानी चालकी सवारियाँ रेल और मोटरोंका मुकाबला कैसे कर सकती हैं। इस सत्यका प्रमाण यह है कि मशीन-युगके सबसे बड़े विरोधी महात्मा गांधीको भी रेल और मोटरोंका सहारा लेना ही पड़ता है। शास्त्रीजी भी शायद; अगर हमेशा नहीं तो जब मिल सके मोटरसे सफ़र करनेको पाप नहीं समझते। होटलोंमें खानेका तर्क भी इसी प्रकारका तर्क है। संसारमें industrialism 'इन्डस्ट्रियलिज्म' जिस शीघ्रतासे बढ़ रहा है, उससे तो ऐसा जान पड़ता है कि घर-घरमें खाना पकानेकी अपेक्षा लोगोंको होटलोंमें भोजन करनेमें अधिक सुविधा रहेगी। बड़े बड़े शहरोंमें भी सैकड़ों व्यक्ति, जिसमें विद्यार्थी लोग और सरकारी मुलाज़िम विशेषकर होटलोंमें भोजन करनेमें अधिक सुविधा अनुभव करते हैं। होटलोंकी संख्या भी देशमें दिन प्रतिदिन बढ़ रही है। और अनेक बड़े शहरोंमें मजदूरोंको भी होटलोंमें खानेमें सुविधा रहती है। कहनेका प्रयोजन यह है कि होटलोंमें भोजन करना और मोटरोंपर चढ़ना, केवल साम्यमादके प्रचारकोंहीके हिस्सेमें नहीं आया है—यह तो समयकी गति है और इन बातोंके विरोधी भी इन चीज़ोंका सहारा लेनेको वाध्य हो रहे हैं।

एक बात और रह गयी है और वह यह कि साम्यवादके प्रचारकोंको ग्रामोंमें जानेका अवकाश ही नहीं मिलता, इसके सम्बन्धमें इतना कह देना ही पर्याप्त होगा कि किसी दलके नेता उस दलका सारा कार्यक्रम स्वयं ही पूरा नहीं किया करते हैं। राष्ट्रीय महासभा कांग्रेसके बड़े-बड़े नेताओंमेंसे अनेकने तो कभी ग्रामोंके अन्दर प्रवेश भी नहीं किया होगा। पर साम्यवादी विचारके लोग ग्रामोंमें नहीं जाते हैं, यह एक वृथा दोषारोपण है। रहा मजदूरोंका संगठन, उसकी ओर तो कभी कांग्रेसने ध्यान भी नहीं दिया है, जो कुछ थोड़ा-बहुत संगटन हो पाया है, उसका श्रेय साम्यवादियोंहीको प्राप्त है।

साम्यवादके समालोचकों को जवाब

(लेखक—श्रीयुत गोविन्दसहाय बी० कॉम)

'जवाहरलाल (क्लासवार) श्रेणी-युद्ध करवाना चाहते हैं। साम्यवादियोंके प्रोग्रामसे देशमें अव्यवस्था मच जायगी। साम्यवादी सिद्धान्त इतिहास और भारतकी संस्कृतिके प्रतिकूल है। भारतके एक राष्ट्र बननेके लिए ये घातक

हैं।' इस प्रकारकी आवाजें आज देशमें राष्ट्रीय आन्दोलनके शिथिल पड़ जानेके कारण उठ रही हैं। इनका उठना स्वाभाविक है। शिथिलता अथवा प्रतिक्रियाके युगमें ही विचारोंका मथन प्रारम्भ होता है। और इस मथन, तर्क और विचार विनिमयके द्वारा नवीन सिद्धान्तों व साधनोंका उदय होता है। जो विचार समालोचना व तर्कसे डरते हैं, वे परीक्षाके समय ठहर नहीं सकते। टीका-टिप्पणी होना ही विचारोंकी सच्चाईका पता देते हैं। अतएव इस प्रकारके तर्कों व घबराहटोंमें ही साम्यवादके सिद्धान्तोंकी विजय छिपी हुई है। इन्हें समझनेके लिये हमें पहले विरोधियोंकी दलीलों व साधनोंको जान लेना हितकर है।

श्रेणी-युद्ध कौन करा रहा है ?

कोई माने या न माने, या देखकर भी आँख मीच ले, पर यह कौन नहीं जानता कि वर्तमान सामाजिक सङ्गठनपर एक विशेष वर्गका पूर्णाधिपत्य है। उत्पादनके तमाम साधनोंपर उनका ही अधिकार है। धर्म, न्याय, विज्ञान आदि सभी सांसारिक उपयोगी वस्तुओंकी कुंजी इस वर्गके हाथमें है। सरकार भी इसी दलकी उँगलियोंपर नाचती है। मतलब यह है कि आधुनिक संसारमें आर्थिक विषयोंका बड़ा ही महत्व है और अर्थशास्त्रोंके तमाम साधनोंपर पूँजीपतियोंका अधिकार है। इस वर्गका धर्म है राष्ट्रीयवाद, ध्येय है पैसा कमाना, और साधन है अपने तथा दूसरे देशोंको आर्थिक गुलामीके चंगुलमें फाँसकर, अपनी सभ्यताको उनपर लादकर सैनिक बलद्वारा शासन करना।

पुराने समयमें एक देश दूसरे देशको तलवारके जोरसे जीतकर उसपर हुकूमत करनेमें गर्वका अनुभव करता था। आज

भी एक देशका दूसरे देशपर आधिपत्य जमानेका अन्त तो नहीं हो गया है, हाँ तरीके अवश्य बदल गये हैं। आज भी अधिक उन्नति और शक्तिशाली देश, निर्बल और अवनत देशोंसे आर्थिक लाभ उठानेके लिए पागल हो रहे हैं, उन्हें अपने देशकी बनायी वस्तुओं-की बिक्रीका बाजार बनानेकी चिन्ता है। इस प्रकार एक देश अगर दूसरे देशको अपनी गुलामीमें रखनेके लिए उत्सुक है, तो, अपनी हुकूमतकी हविश पूरा करनेके लिए नहीं बल्कि उससे अधिक लाभ उठाने और वहाँका धन बटोरनेके लिए। यह तो हुई साम्राज्यके दूसरे देशोंपर आधिपत्यकी बात, अब जरा अपने देशमें होनेवाले आर्थिक संघर्ष व जीवन-युद्धको देखिये।

प्रत्यक्षको प्रमाणकी जरूरत नहीं। आज हम क्या देख रहे हैं। चारों ओर कलह मची हुई है। अधिकांश लोग पैसेकी कमी, खाद्य पदार्थोंके अभावके कारण तड़प रहे हैं, तो थोड़ेसे पैसेकी बढ़ती व वस्तुओंके ढेरके कारण परेशान हैं, और दिनों दिन ज्यादा बटोरनेके लिए नाना प्रकारकी मकारी और छल-छिद्रकी सोचते हैं। धनकी कमीके कारण सैकड़ों स्त्रियाँ वेश्या बन जाती हैं। दूसरी ओर जल्दीसे पैसा इकट्ठा करनेके लिये पूँजीपति, मालदार और व्यापारीलोग सट्टा, जुआ, लाटरी आदि भ्रष्ट व्यवसायोंमें महापाप करते हुए भी धड़ा-धड़ीसे शरीक हो रहे हैं। जो लोग धर्मके अन्दर बड़ी-बड़ी डींगे मारते हैं, जो समाजमें बड़े-बड़े पंचोंके स्थानपर बैठते हैं, जो मजहबवादकी छोटी-छोटी कल्पित बातोंके लिये भूखोंकी तरह जान कुरबान करनेको तैयार हो जाते हैं, वे ही आज अपने और अपने बाल-बच्चोंके लिये पाँच या दस रुपयेकी नौकरी करनेके लिये जूतियाँ चटकाते

फिरते हैं। न कहीं हिन्दूका सवाल है, न मुसलमानका। पैसेके मामलेमें लालाजी और मौलवी साहब दोनों सगे भाई हैं। सूदकी दर कम करनेकी बात उठाओ, तो सूदको हराम माननेवाले मुसलमान पूँजीपति भी चींटीको आटा खिलानेवाले लालाजीके हमबगल हैं। किसानोंके लगान कम करनेकी बात उठाओ, तो हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई सब जमींदार एक हैं। मतलब यह कि समाजमें पैसेके सामने, धर्म, ईश्वर स्वर्ग सब फीके पड़ रहे हैं। पैसेके मामलेमें समाजमें दो ही जातियाँ हैं—पैसेवाले और फाके मस्त।

इस प्रकार थोड़ेसे मुट्ठीभर काले पँजीपति, व्यापारी, बड़े बड़े जमींदार, ताल्लुकेदार पैसेकी बढ़तीसे उन्मादित होकर नाना प्रकारके सदाचार विरुद्ध कामोंमें मग्न हैं। नाच, रंग, खेल, तमाशे, सिनेमा, घुड़दौड़, बलात्कार आदि भयंकरसे भयंकर पाप इनके वास्ते जायज हैं। इनके कार्योंपर धर्मकी मोहर है, ईश्वरका आशीर्वाद है, और देश-भक्तिकी भी छाप है—अगर ये देश-सेवा शब्द चिल्लाने लगें। मुल्ले, पंडित, पादरी सदैव इनके दानके भिखारी बन इनके सामने खड़े रहते हैं। समाचारपत्रों और साहित्यतकको यह लोग अपनी क्षुद्रपरताकी तृप्तिके लिये खरीद लेते हैं। दूसरी ओर कड़ी धूप और कड़े जाड़ेमें टट्टी लगाकर काम करनेवाले किसान, मजदूर, मिस्त्री आदि पेटभर भोजन भी नहीं पाते। नवयुवक बेकारीसे बिलबिला रहे हैं। लोग काम करना चाहते हैं, पर उन्हें काम नहीं मिलता। संसारकी पैदावार पहलेसे कई गुना बढ़ चुकी है, किन्तु गरीबी, बेकारी भी दिनोदिन भीषण रूप धारण कर रही है। एक वर्गका सम्पत्ति व पैदावारके

साधनोंपर अधिकार होनेके कारण काम करनेवाले समुदाय उसके मोहताज हैं। वह अगर अपना लाभ समझें, तो काम दें वरना बरखास्त कर दें। मतलब यह है कि कमानेवाले समुदाय आज बाजारमें बिकनेकी वस्तु हैं, और पैसेके लगानेवाले, उनकी कार्य-शक्तिके मालिक हैं। यह हो रहा है। एक वर्ग दूसरे वर्गके खूनका प्यासा है। जिनके आँखें हों, वह देखें।

साम्यवादियोंका दोष

तो केवल इतना ही है कि उन्होंने इस जीवन युद्ध व आर्थिक संघर्षको समझ लिया है, और फिर लोगोंकी गरीबी, बेकारी, नैतिक-पतनके कारणोंको स्पष्टतः बता भी दिया है। उनका कहना है, वर्तमान समाज सङ्गठन दो दलोंमें विभक्त है। एक अर्थ-सम्पन्न पूँजीपति वर्ग दूसरा अर्थ-विहीन मजदूर किसान दल। इन दोनों दलोंके स्वार्थोंमें बहुत बड़ा जबरदस्त विरोध उत्पन्न हो गया है, जो मालदारों, जमींदारों, पूँजीपतियोंकी रक्तशोषण नीतिके कारण बढ़ता ही जा रहा है। पूँजीपति अपने अर्थके प्रभावके नीचे धनहीनोंको कुचल देना चाहते हैं। दूसरी ओर मजदूर व किसान दल भी इनकी नीतिसे ऊबकर सङ्गठनकी ओर प्रत्यक्ष रूपमें बढ़ रहा है। समुदाय धीरे-धीरे समझने लगा है, कि पूँजी-पति निर्जीव धनकी बदौलत हम सजीव प्राणियोंपर अत्याचार कर रहे हैं। इन्होंने हमारे मन और कार्य-शक्तिपर धनकी सत्ताके द्वारा अधिकार जमा लिया है। इन दोनों दलोंका संघर्ष अनि-वार्य है। और इनका सङ्गठन, जातीयता, धार्मिकता व राष्ट्रीयताके सिद्धान्तपर न होकर आर्थिक सिद्धान्तोंके आधारपर हो।

साम्यवादी केवल इस नग्न-सत्यका बखान करते हैं, परन्तु साथ ही अपने-आपको कमानेवाले समुदायका समर्थक बतलाते हैं, बस यह उनका दोष है।

उनके उपाय

इन अनिवार्य युद्धको बतलानेके बाद ये लोग इस युद्धको शान्त करनेको तथा समाजमें सुख, शान्ति और स्थाई व्यवस्था स्थापित करनेके कुछ उपाय भी बताते हैं। वह है (१) व्यक्तिगत सम्पत्तिके सिद्धान्तके अस्तित्वको मिटाकर उत्पादनके साधनोंपर जमीन, कारखानों, सड़कों, रेलों, बैङ्कों, पूँजी इत्यादिपर समाजका अधिकार स्थापित करना। (२) समाजको जातीयता, धार्मिकता व राष्ट्रीयताके आधारपर न बाँटकर देशों, रोजगारोंके आधारपर बाँटना। (३) समाजमें काम करनेवालोंका राज्य स्थापित करना, और काहिलों व अलहदियों, मुफ्तखोरों, धार्मिक ठेकेदारोंको उनके अधिकारोंसे वंचित करना। (४) हरेकको काम देना, और इस बातका पूरा खयाल रखना कि हर एकको उसके श्रमका पूर्णरूपसे बदला मिलेगा। दो शब्दोंमें ये हैं, उनके सिद्धान्तोंका निचोड़ और उनका साधन। समाजके समस्त असन्तुष्ट दलोंको सङ्गठित करके वर्तमान सामाजिक सङ्गठनके विरुद्ध विद्रोह कराना। निस्सन्देह ये लोग शान्तिमय व अशान्तिमय उपायोंमें कोई विशेष भेद नहीं समझते। किन्तु हिंसात्मक तथा अशान्तिमय साधनोंका उपयोग करना तो वर्तमान सरकारके हाथमें खेलना है। केवल शान्तिमय उपाय जैसे हड़ताल, करबन्दी आन्दोलन, विचारोंका प्रचार ही ऐसे साधन हैं, जिनके द्वारा सफलता निश्चय है। ये युद्ध तो विकासके युद्ध हैं।

समालोचकोंके आक्षेप

व्यक्तिगत सम्पत्तिके सिद्धान्तके अस्वीकारके कारण बहुतसे लोग बिगड़कर कहते हैं, कि ऐसा तो असम्भव है। व्यक्तिगत सम्पत्ति तो ऐतिहासिक उपहार है। इस विषयपर हम विस्तारमें तो नहीं पड़ना चाहते, जहाँतक इतिहासका सम्बन्ध है, हम यह कह सकते हैं कि (एक भयंकर भूल है) भूतकालकी बातोंपर विश्वास करके ही, भविष्यकी बातोंका निश्चय कर लेना। क्योंकि मनुष्यजाति उन्नतिशील प्राणी है, उसका भविष्य भूतकालकी अपेक्षा उज्ज्वल रहता है। भूतकालके अनुभावोंसे वह लाभ अवश्य उठाता है; परन्तु केवल इसके आधारपर वह भावी तत्व तय नहीं हो सकते। इतिहासमें ऐसी बहुत-सी बातोंका पता नहीं, जिनकी आज खोज हो रही है, और जिनसे मनुष्य जाति अपरिमित लाभ उठा रही है। इस प्रकार सम्भव है व्यक्तिगत सम्पत्तिकी भावना उस समय बुरी न मानी जाती हो, और इसी कारण इसका अस्तित्त्व बना रहा हो, पर आजके जमानेमें तो इसने गजब ढा रक्खा है। इसी वजहसे समाज दो दलोंमें बटा हुआ है, और एक दूसरेके खूनका प्यासा है। समाजकी वर्तमान कलह व अशान्तिका यही एक मुख्य कारण है। ऐसी हालतमें केवल इतिहासका पल्ला पकड़कर उसको अस्वाभाविक कह देनेसे संसारका समाधान नहीं हो सकता।

राष्ट्रवादियोंकी स्कीमकी अपूर्णता

'राष्ट्रीयवादियोंका कहना है, कि पहले हमें एक देशमें संगठित होना चाहिए, और पूर्ण स्वतन्त्रताका आन्दोलन करना

चाहिए।' ये दोनों भ्रममें डालनेवाली हैं। एक राष्ट्रमें संगठित होना चाहिए, बड़ी अच्छी बात है; पर किस आधारपर ? यहाँ ये चुप हैं। वर्तमान सामाजिक संगठनमें ये कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं करना चाहते, और न वर्तमानमें दिनोंदिन होनेवाले आर्थिक युद्धको ही बतलाना चाहते हैं। पूर्ण-स्वतन्त्रताकी कोई स्पष्ट व्याख्या भी नहीं करते, और न यही बताते हैं, कि पूर्ण-स्वतन्त्रता किसके लिये चाहिये।

इनके साधन हैं

देशकी विभिन्न जातियोंमें समझौतेद्वारा एक राष्ट्र बनानेकी कल्पना करना। जरा इसकी भी पोलको देखिये। आज हमारा देश, जाति-पाँति, छुआछूत और धार्मिक मतभेदके कारण लाखों सम्प्रदायोंमें बँटा हुआ है। प्रत्येक सम्प्रदाय एक दूसरेसे रीति-रिवाज व रूढ़ियोंकी गुलामीके कारण अपनी-अपनी अलग डफली बजा रहा है। जाति-पाँतिके झमेलेने हमारे अन्दर भेद-भावकी दीवारें खड़ी कर रक्खी हैं, छुआछूतने ऊँच नीचके भाव बना रखे हैं, और धार्मिक मतभेदोंने हमें अलग-अलग कोठरियोंमें बन्द कर, शुद्ध हवासे वंचित कर रखा है। राष्ट्रीय उत्थानके समर्थक इन सब बन्धनोंको तोड़ना नहीं चाहते, और अपना काम चलानेके लिए इन सब चीजोंको जैसाका तैसा स्वीकार कर लेते हैं। वह चाहते हैं इन सब विभिन्न सम्प्रदायोंको देशभक्तिके नामपर सङ्गठित करना। इस नीतिका फल वही हो रहा है, जो कि यूरोपके अन्दर शान्ति-समस्याको सुलझानेवाली कान्फ्रेंसोंका अबतक होता रहा है। विभिन्नताके असली कारणोंको पूर्णतः

मिटाये हुए समझौतेकी बातें करना, भूलभुलैयाका प्रपंच नहीं तो क्या है ? लखनऊ पैक्ट, नेहरू रिपोर्ट, मालवीय सम्मेलन इस विफलताके जीते-जागते उदाहरण हैं।

मुख्य सवाल तो यह है कि समझौता किस सिद्धान्तपर हो ? इन सबको आपसमें मिलानेवाली चीजें क्या हैं ? राष्ट्रीय स्वतन्त्रता—सो, वह तो केवल कल्पना ही है। देश-भक्ति यह भी एक कोरा भाव ही है। यह युग है प्रत्यक्षवादका और सांसारिक व्यवहारका। अब लोग अलौकिक कल्पनाओंके पीछे नहीं मरते और न स्वर्ग, नरकके तिलिस्ममें ही फँसते हैं। इसकी पूर्तिके लिए राष्ट्रीयवादी कौंसिल असेम्बलीकी सीटें नियुक्त करते हैं, जिसका प्रतिकार, सरकार एकको दूसरेसे देकर कर देती है। सारे सम्मेलन इसलिए विफल हुए। १९३२ में मालवीय-सम्मेलनने बड़े-बड़े परिश्रमके बाद केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभामें हिन्दू-मुसलमानोंकी सीटोंका समझौता किया। झटसे सर सेमुयल होरने सन् ३३ की घोषणा कर दी। बस मुसलमान मचल गये, और सम्मेलनकी टायँ टायँ फिस हो गयी। इस प्रकारके समझौतोंमें तो वही सफल होगा, जिसके हाथमें देनेकी शक्ति है। वह है सरकारके पास। सो वह क्यों समझौता चाहेगी। अतएव राष्ट्रवादियों यानी देश-भक्तिको दुहाई देनेवालोंके इस साधनसे न तो देश ही सङ्गठित हो पाता है, और न प्रचलित सामाजिक बन्धन ही टूट पाते हैं।

दूसरी ओर साम्यवादियोंका प्रोग्राम बहुत ही स्पष्ट और सरल है। वह इन दोनों ही उद्देश्योंकी पूर्ति करता है। वह लोग मनुष्य समाजको जाति-पाँति और धर्मके आधारपर नहीं स्वीकार करते बल्कि लोगोंको उनके रोजगार व व्यवसायके आधारपर

मानकर संगठित करते हैं। खेती करनेवाले सब किसान हैं—चाहे हिन्दू हों या मुसलमान, ईसाई या यहूदी। मजदूरोंकी भी अपनी अलग बिरादरी है। समाजमें मजदूरी पेशा करनेवाले सारे मजदूर एक समुदाय हैं। इसी प्रकार व्यापारियों, पूँजीपतियों, जमींदारों, ताल्लुकेदारों तथा इन अन्य पिटठुओंकी अलग बिरादरी है। इस प्रकार मनुष्य समाज, आर्थिक सिद्धान्तोंपर, पेशों व रोजगारोंके कारण बँटा हुआ है और इन सबमें एक दूसरेका सहयोग होते हुए भी आर्थिक टक्करें हो रही हैं। केवल इस सीधी-सी बातको बिलबिलाती और अँधेरेमें भटकती हुई जनताको बतानेसे समाजके सैकड़ों रोग नष्ट हो जाते हैं। एक ही तीरसे सैकड़ों निशाने बिध जाते हैं। जाति-पाँतिका प्रश्न भी हल हो जाता है। छुआछूतका भूत भी मिट जाता है। और धार्मिक मत-भेदका पहाड़ भी बालूका ढेर बन जाता है धर्मकी अफीमका नशा उतरकर, मनुष्य मनुष्यके समीप आ जाता है।

आज़ादीके आन्दोलन क्यों विफल हुए ?

१८५७ के पिटे हुए भारतने सर्वप्रथम १९२१ के असहयोग आन्दोलनद्वारा आजादी चिल्लाना सीखा। असहयोग आन्दोलन आसमानसे बिजलीकी भाँति नहीं टूटा था। उसके स्थायी कारण थे। वह देशीय व अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओंके जमघटका परिणाम था। उसके पीछे १७५७ से बादतकको एक कसक थी। १९१४ के महायुद्धकी प्रतिज्ञाओंका प्रपंच था, और थीं उसके साथ अन्तर्राष्ट्रीय जनसत्तात्मक लहरकी बौछारें, राष्ट्रपति विलसनकी घोषणा और आयर्लैण्डके होमरूल बिलकी सफलता। इन सब

बाह्य कारणोंके साथ था भारतीय सरकारका रौलेट एक्टका उपहार और युद्ध कालकी प्रतिज्ञाओंकी अपूर्णता। और इन सबके साथ समयानुकूल लीडर। आन्दोलन उठा और आँधीकी तरह चला। तूफान आया और चला गया। क्यों चला गया? इसपर बहुत कुछ कहा जा सकता है, किन्तु उसका मुख्य कारण यही था कि देशका नेता आजादीके रूपका बखान करनेमें स्पष्ट न था। कल्पनाओंके पीछे, जैसा अन्याय, असत्य, हिंसा इत्यादि मानव मनोवृत्तियोंके विरुद्ध, आन्दोलन उठा और इन भावनाओं-के सोते ही आन्दोलनकी गति भी मन्द हो गयी। आज जलियान-वाले बागकी घटना किसीको उत्तेजित नहीं करती। यह मनुष्यका स्वभाव है, न उसमें घृणा ही स्थायी है और न प्रेम ही।

गांधीजीने इस बातको ताड़ा और १९३० के आन्दोलनका आधार नमक-करको तोड़ना केवल इसीलिए रक्खा गया। १९३० में पूर्ण स्वतन्त्रताका युद्ध हुआ। यह क्रांतिके सिद्धान्तोंपर अवलम्बित था और था इसके पीछे देशका १० वर्षका अनुभव। इसके भी स्थायी व क्षणिक कारण थे। ये भी घटनाओंके जमघटका ही परिणाम था। साइमन कमीशनकी नियुक्ति, राष्ट्रीय-वादियों व लिबरलोंका मेल व हाजी बिल व विनिमय दरके कारण व्यापारियों व पूँजीपतियोंका सरकारके प्रति असन्तोष, गान्धीकी बारडोलीमें सफलता, साम्यवादियोंके प्रभावकी वृद्धि, जवाहरलालका पूर्ण स्वतंत्रताका आन्दोलन, क्रांतिकारी षडयंत्रोंकी भरमार यह सब ऐसी घटनाएँ थीं, जिन्होंने देशको युद्धकी ओर अग्रसर कर रक्खा था।

युद्ध हुआ और खूब हुआ। नमक-करसे बढ़ते-बढ़ते करबन्दी

आन्दोलनतक पहुँच गया। १९३१ मार्च मासमें गांधी-अरविन समझौता हुआ। करांची कांग्रेसमें जवाहरलालके घोर उद्योगसे एक आर्थिक कार्य-क्रम भी रक्खा गया। इस सुलहके युगमें नये नये दल कांग्रेसमें आये और गये। किसानोंका पदार्पण हुआ, पूँजोपतियों व जमींदारोंकी ओरसे खींच शुरू हुई। कांग्रेस जनताकी होने लगी। उधर सरकारने भी राष्ट्रीय शक्तिको भाँप लिया। संघर्ष अनिवार्य था। दो गवर्नमेण्ट साथ-साथ चल नहीं सकती थीं। सन् १९३२ के जनवरी मासमें युद्ध शुरू हुआ। पूँजीपति व्यापारी, जमींदार इत्यादि ये शुरूसे ही आन्दोलनसे खिसकने लगे। जनता, विशेषकर किसानोंने खूब साथ दिया और जी तोड़कर लड़े; किन्तु फिर भी कांग्रेसका प्रोग्राम स्पष्ट न था। एक तरफ पूर्ण स्वतन्त्रताको घोषणा थी, दूसरी ओर पूर्ण स्वतन्त्रताका तत्व ११ शर्तें, हृदय परिवर्तन, यहाँतक कि पूना कांफ्रेन्समें सन् १९३३ में तो केवल शान्ति स्थापनाकी बातें ही रह गयी थीं। क्रियाकी प्रतिक्रिया शुरू हुई। आन्दोलनमें शिथिलता आयी। गर्म दलके लोग तो जेलमें ही रहे, किन्तु नर्म दलवाले उठे और फिरसे कौंसिल-प्रवेश, वैध आन्दोलन, देशके उत्थानकी बातें उमड़ने लगीं। दुर्भाग्यसे आज फिर राष्ट्रीय आन्दोलनकी बागडोर उन सबलोगोंके हाथोंमें पड़ गयी है, जिनकी पूर्ण स्वतन्त्रता कौंसिलकी सीटों या ह्वाइट पेपरमें कुछ संशोधन करानेमें ही है। पूर्ण स्वतन्त्रताका स्पष्ट रूप न होनेके कारण आज फिर हम देशभक्तिके नामपर वैध आन्दोलनकी तरङ्ग सुन रहे हैं। कांग्रेसके सर्वेसर्वा नेताकी सबसे बड़ी भूल यही रही है कि उसने सदैव ऐसे दलोंसे दुर्बल समझौते किये जिनकी देशभक्ति

उनकी नोटबुकसे बाहर नहीं है। गांधोजी शायद आशा करते हों कि यह लोग उनके कहनेसे राष्ट्रीय आन्दोलनको लाभ पहुँचावेंगे; लेकिन सच तो यह है कि ऐसे ही सज्जनोंने १९२३ में जनताको हताश किया था और फिर यही लोग गांधीजीको दुम पकड़कर राष्ट्रीय आन्दोलनका मटियामेट कर रहे हैं। जनता, किसान, मजदूर और नवयुवक किस उद्देश्य व उत्साहको लेकर अपनी जान खपावें? संसारके सभी आन्दोलनोंमें शिथिलता आती है, किन्तु इसके यह अर्थ नहीं कि हताश होकर पोछेको लौट जावे।

देश जबतक पूर्ण स्वतन्त्रताका स्पष्ट अर्थ नहीं समझेगा, क्योंकि पूर्ण स्वतन्त्रताके भी भिन्न भिन्न वर्गोंके लिये अलग अलग अर्थ हैं, तबतक कोई भी समुदाय आन्दोलनमें खुलकर नहीं खेलेगा। समय आ गया है कि हमको पीछेकी घटनाओंसे लाभ उठाकर साहसके साथ इसका एलान करना चाहिये। आज पूँजीपति कहते हैं कि हमने आन्दोलनमें सबसे अधिक त्याग किया, अतएव अब आन्दोलनको बन्द करना चाहिये, नवयुवक व किसान कहते हैं कि हमने सबसे अधिक त्याग किया। अगर हमने स्पष्टतः अपनी नीति व कार्यक्रम रखा होता तो आज यह तू-तू मैं-मैं न होती। सबको सन्तुष्ट करके साथ ले चलनेकी कल्पना करना सबको धोका देना है। इसी कारण कोई भी जी-जानसे शरीक नहीं होता। पूँजीपतियों व व्यापारियोंको यह भय रहता है कि कहीं मजदूर लोग जोर न पकड़ जावें और जमींदार किसानोंकी शक्तिसे भय खाते रहते हैं। निःसन्देह राष्ट्रीयताके मदमें शरीक तो सब सम्प्रदाय होते हैं, परन्तु ज्यों ही संघर्ष तीव्र होने लगता

है, सभी पारस्परिक भय और आशंका होनेके कारण भाग जाते हैं, और अन्तमें सब निराश हो, एक दूसरेपर दोषारोपण करने लगते हैं। साम्यवादी इस प्रश्नपर बिलकुल साफ हैं। वह डंकेकी चोटसे एलान करते हैं कि पूर्ण स्वतन्त्रताका अर्थ है—देशमें मजदूरों, किसानों व अन्य काम करनेवालोंकी देशी व विदेशी पूँजीपतियों व सरकारके हाथोंसे मुक्त होना। जिन सम्प्रदायोंको उनके इस एलानसे सुखी होनेकी आशा हो, वह इस जीवन युद्धमें सम्मिलित होवें। और जो देशभक्तिसे प्रोत्साहित हो, भारतकी गुलामीको देखकर तड़प रहे हों वह भी आवें, और प्रचलित अन्याय व लड़ाई-झगड़ेके विरुद्ध हमारा साथ दें। इसमें न किसी आशंकाकी जरूरत है और न कोई मृग-मरीचिका-सा दृश्य है।

क्या बड़ी-बड़ी मशीनोंकी ज़रूरत नहीं है ?

[लेखक—श्रीयुत सेठ दामोदरस्वरूप]

अब यह प्रश्न उठता है कि यदि बड़ी-बड़ी मशीनोंका आविष्कार ही किसान और मजदूरोंकी गुलामीका

जिम्मेदार है, तो क्या इन मशीनोंकी जरूरत ही नहीं है ? नहीं, जरूरत है; क्योंकि इन मशीनोंका आविष्कार अस्वाभाविक नहीं; बल्कि मानव-जातिके विकासके इतिहासमें सर्वथा अनुकूल है। मानव-जातिका सारा इतिहास एक प्रकारसे वर्गोंके परस्पर संघर्षका इतिहास रहा है। समाजके विकासकी भिन्न-भिन्न अवस्थाओंमें अधिकारी लोगों और दलितवर्गके बीच, मालिक और गुलामोंके बीच बराबर संग्राम रहा है। यह संघर्ष अब विकासकी उस सीमापर पहुँच गया है कि जहाँ अधिकारी और शासकवर्गका सदाके लिए बिना अन्त हुए पददलित और पीड़ितवर्गके लोग उनके जुल्म और उत्पीड़नसे आजाद नहीं हो सकते। औद्योगिक क्रान्ति और औद्योगिक विकासके साथ मानवजातिका भी बराबर विकास हो रहा है दूसरे शब्दोंमें सारे विकास मानव-जातिहीके विकास हैं। बिना मनुष्यके बौद्धिक विकासके औद्योगिक विकास सम्भव ही नहीं होता, बड़ी-बड़ी-मशीनरीकी ईजाद मनुष्यके बौद्धिक विकासहीका फल है। मनुष्य-गणनाका इतिहास बता रहा है कि दुनियाकी आबादी बराबर बढ़ रही है। यदि आज संसारमें कृषिकी बड़ी-बड़ी मशीनें न हुई होतीं तो अन्नकी पैदावार आज भी उतनी ही होती, जितनी कि आजसे १०० वर्ष पहले थी। क्योंकि पुरानी चालके औजारों और पुराने तरीकोंसे अन्नकी उपज बढ़ानेका कोई उपाय हो ही नहीं सकता था; पर दुनियाकी आबादी आज १०० वर्ष पहलेसे बहुत अधिक बढ़ गयी है और अगले १०० वर्ष-में और भी बढ़ जायगी। फिर अगर उसीके साथ साथ पैदावार न बढ़े, तो करोड़ोंकी संख्यामें लोग अन्नके बिना तड़प तड़पकर

मरेंगे। इसीलिये जहाँ एक ओर बड़ी-बड़ी मशीनरीकी ईजाद किसानों और मजदूरोंकी गुलामीकी जिम्मेवार है, वहाँ वह बढ़ती हुई दुनियाकी आबादीके लिए आवश्यक वस्तुएँ और अन्न पैदा करनेकी कठिनाईका भी सवाल हल कर देता है—जो और किसी प्रकार सम्भव न था। इसलिये जो लोग बड़ी-बड़ी कलों और मशीनोंका विरोध करते हैं, वह मानव-जाति और संसारके विकासके इतिहाससे अपनी अनभिज्ञता प्रकट करते हैं। न तो इस विकासकी प्रगतिका रोकना सम्भव है और न इसके रोकनेकी आवश्यकता ही है। इसलिये जो लोग Back to Nature अतीतके स्वप्न देखते हैं, उनकी यह कल्पना-मात्र है। वह वस्तु-स्थितिकी ओरसे आँखें बन्द करके असम्भवको सम्भव बनाना चाहते हैं। आज मशीन-युग है, इसलिये युगके अनुसार समाजकी व्यवस्थामें आवश्यक परिवर्तन करना ही एकमात्र हमारा ध्येय होना चाहिये—युगके पलटनेका व्यर्थ प्रयत्न नहीं। जब यह सिद्ध हो गया कि बड़ी-बड़ी मशीनोंके ईजादने संसारकी बढ़ती हुई आबादीकी जरूरतोंको पूरा करनेकी बड़ी भारी कठिनाईको हल कर दिया है, तो फिर हमें गम्भीरतासे इस बात-पर विचार करना चाहिये कि इन मशीनोंके सम्बन्धमें और कौनसी बात है जो श्रमियों और किसानोंको पूँजीपतियोंके रहमपर छोड़ देती है। थोड़ासा विचार करनेहीसे स्पष्ट हो जाता है कि बड़ी-बड़ी मशीनें और बड़े-बड़े कारखाने यदि एक व्यक्ति या थोड़ेसे व्यक्तियोंकी मिलकियत न होकर समाजकी मिलकियत हों, तो वह किसी विशेष श्रेणीको दूसरी श्रेणीका गुलाम बना सकनेका कारण न हो सकेंगी। इसी प्रकार मशीनरीके साथ-साथ यदि

उत्पादनके दूसरे साधन, जमीन इत्यादि भी सारे समाजकी मिलकियत हो जावें तो संसारसे वर्गवाद बहुत हदतक नष्ट हो जाय। फिर जमींदार और किसान, कारखानादार और मजदूरका प्रश्न ही न रहे, सब ही स्वामी और सब ही सेवक हों, यही साम्यवादका मूल मन्त्र है और इसी प्रकारकी व्यवस्थासे मशीनरी-का सदुपयोग हो सकता है। एक व्यक्ति या थोड़ेसे व्यक्तियोंकी संपत्ति होनेसे मशीनरी किसानों और मजदूरोंको किस प्रकार गुलाम बनाती हैं? पहली बात तो यह है, व्यक्तिगत सम्पत्ति होने-के कारण बड़ी बड़ी मशीनोंके व्यवहारसे जो लाभ होता है, उसके मालिक एक या थोड़ेसे व्यक्ति, जो कुछ भी परिश्रम नहीं करते हैं, बन जाते हैं। जो थोड़ी-सी मजदूरी यह मालिक मजदूर या किसानको देते हैं; वह उसकी कड़ी मेहनतके सामने कोई भी मूल्य नहीं रखती। यदि मजदूर और किसान खुद मशीनरीके मालिक होते, तो उसके द्वारा करोड़ों रुपयेके लाभमें वह भी अपनी मेहनतके अनुसार हिस्सा पाते।

दूसरी बात यह है कि मिल-मालिक या जमींदार इन मशीनों-का व्यवहार मजदूरों और किसानोंके हितके दृष्टिकोणसे नहीं करता है, बल्कि अपने निजी लाभके दृष्टिकोणसे। एक दृष्टान्त लीजिये—एक कारखानेमें किसी कार्यको १० मजदूर १० घण्टे रोजाना काम करके उसे समाप्त करते हैं। अब कोई नयी और बढ़िया मशीन बन गयी, जो उसी कामको केवल १० घण्टेमें ही समाप्त कर देती है, परिणाम यह होगा, कि वह मिल-मालिक ९ मजदूरोंको अपने कारखानेसे निकाल देगा और वह बिचारे बेकारीके शिकार बनकर भूखों मरेंगे। यदि मजदूर स्वयं उस

मशीनके मालिक होते, तो ऐसा सम्भव न होता। मिल-मालिकोंके इस प्रकारके व्यवहारने बेकारी बढ़ा दी है और बेकार मजदूर भूखके कष्टसे बचनेके बजाय गुलामी करने और किसी-न-किसी प्रकारसे पेट भरनेके लिये तैयार हो जाते हैं। एक या थोड़ेसे लोगोंकी सम्पत्ति होनेके कारण किसी मिलके मालिक अपने या अपने साथियोंके लाभकी बात ही सोचा करते हैं। उनके लाभसे समाजके एक बड़े भागको कितना कष्ट और कितनी हानि होती है, यह बात उनके ध्यानमें भी नहीं आती। इस प्रकार औद्योगिक क्रान्तिके फलस्वरूप जब मशीन ही व्यक्तिगत सम्पत्ति बन गयी और स्वतंत्र उद्योग-धंधे उनका मुक़ाबिला न कर सकनेके कारण नष्ट हो गये तो फिर मजदूरों और किसानोंको इन पूँजी-पतियोंकी गुलामीके सिवाय दूसरा कोई चारा ही न रहा। सार्वजनिक उपयोगके साधनोंका समष्टीकरण ही इस रोगकी एकमात्र औषधि है। ऊपर हमने लिखा है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति होनेसे उत्पादनके साधन संघर्षमें बेकारीके रोग फैलते हैं।

बेकारी किस प्रकार शुरू हुई? इस बातके समझानेके बाद इसके फैलावके समझानेमें कोई कठिनाई नहीं रहती। प्रत्येक मनुष्य बाजारसे वस्तुएँ खरीदता है। इस प्रकार जितने अधिक लोग बाजारसे चीजें मोल लेंगे, उतनी ही वस्तुओंको बनानेके लिए कारखानोंकी जरूरत पड़ेगी। इसी प्रकार यदि बाजारमें चीजोंकी माँग घट जावे, तो उसी हद्तक कारखानोंकी कमी हो जायगी या उन कारखानोंमें काम करनेवाले कम हो जाएँगे, दूसरे शब्दोंमें जो लोग कामके कम होनेके कारण बेकार कर दिये गये, वह बेकार होनेके कारण पहलेहीकी तरह अब

बाजारसे चीजें खरीदना बन्द कर देंगे, क्योंकि उनके पास बेकार होनेसे अब कोई आमदनी तो रह नहीं गयी। परिणाम यह होगा कि बाजारमें चीजोंकी माँग घटनेसे और भी घट जावेगी और माँग घटनेसे और भी लोग कारखानेसे निकाले जावेंगे, क्योंकि जब बाजारमें मालकी खपत ही नहीं तो कारखानेदार जो अपना कारखाना निजी लाभके लिए चलाता है, और जो उसकी निजी मिलकियत है, वह समाजमें इस बढ़ती हुई बेकारीसे अपने लाभको क्यों खोने लगा। यदि वह कारखाना सब मजदूरोंको मिलकियत होता, तो वे लोग उतनी ही चीजें तैयार करते जितनोंकी माँग होती और कारखानेसे न कोई निकाला जाता, क्योंकि सबको सम्पत्ति होनेसे कारखानेका सारा लाभ सबमें बँट जाता और अधिक बेकारी न फैलने पाती।

इस प्रकार यह सिद्ध हो गया कि थोड़ेसे लोगोंके हाथमें ही उत्पादनके साधन होनेके कारण बेकारी शुरू होती है और धीरे-धीरे फैलकर समाजकी अत्यधिक संख्याको बेकार बना रही है जिसका अन्तिम परिणाम एक संसारव्यापी क्रान्ति ही होगा।

इस प्रकार बेकारी बढ़नेसे लाखों और करोड़ों स्त्री, पुरुष और बच्चे न केवल भूखे और नंगे ही रहते हैं; बल्कि दिन-प्रति दिन उनका शारीरिक, नैतिक और मानसिक पतन भी बढ़ता जाता है। इसीलिये आवश्यकता इस बातकी है कि मशीनरीका विरोध करनेके बदले व्यक्तिगत सम्पत्ति होनेके कारण उसका जो दुरुपयोग होता है उसे रोकें; क्योंकि जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि मनुष्योंकी बढ़ती हुई संख्या और बढ़ती हुई आवश्यकताओंके कारण मशीनरीका व्यवहार अनिवार्य हो गया है।

संसारमें कोई भी अच्छीसे-अच्छी चीज ऐसी नहीं है, जिसका दुरुपयोग न हो रहा हो या न हो सकता हो। तब यह कहाँतक बुद्धिमानी है कि किसी वस्तुके दुरुपयोगके कारण हम उस चीज-हीके विरोधी हो जायँ, और Back to Nature की दुहाई देने लगें। आवश्यकता तो उसके दुरुपयोगके रोकनेकी है। जिस समय मशीनरी इत्यादि साधन थोड़ेसे भाग्यवान लोगोंको मिल-कियत न रहकर मजदूरों और किसानोंकी—या यों कहिये कि समाजकी मिलकियत हो जाते हैं, उस समय उनका दुरुपयोग रूपी विष नष्ट होकर उसमें अमृत ही रह जाता है। और—

१—लोगोंको शारीरिक परिश्रम कम करना पड़ता है।

२—पैदावार अधिक हो जाती है।

३—बेकारी नहीं फैलती।

४—सबलोग जो परिश्रम करते हैं, उनकी उचित आवश्य-कतायें आसानीसे पूरी हो सकती हैं।

५—अवकाश मिलनेसे समाजको शारीरिक, मानसिक और विविध प्रकारकी उन्नति करनेके लिए काफी समय और सुविधायें मिल जाती हैं। वर्तमान समाज-संगठनमें श्रमियों और उत्पादनके साधनोंके अधिकारियोंके स्वार्थ परस्पर विरोधी हैं। बिना एककी हानिके दूसरेको लाभ हो ही नहीं सकता। दृष्टान्तके रूपमें जब एक कारखाने या फर्ममें मजदूर या किसानकी मजदूरी घटायी जाती है, तो कारखाने या फार्मके मालिकको लाभ होता है और यदि मजदूरी बढ़ायी जाती है, तो स्वामीकी हानि होती है। इसी प्रकार जबतक व्यक्तिगत अधिकारोंको कम नहीं किया जाता, समाजके अधिकार बँट ही नहीं सकते। चूँकि थोड़ेसे

लोग उत्पादनके साधनोंको पकड़े हुए हैं, जिसके कारण समाजकी कठिनाइयाँ दिन-पर-दिन बढ़ रही हैं। समाजका यह कर्त्तव्य है, कि वह इस बातकी माँग रखे कि यह साधन समाजकी मिलकियत हो जावे; पर जैसा हम ऊपर कह चुके हैं इसमें अधिकारीवर्गकी हानि है। अतः वह अधिकारीवर्ग सहजमें त्यागके लिये तैयार नहीं हो सकता। इसलिये समाजको संगठित होकर ही यह अधिकार उनके हाथोंसे निकालने होंगे।

हमारे बहुतसे भाई और स्वयं गांधीजी भी इस बातका विरोध कर रहे हैं कि किसानों और मजदूरोंका संगठन राजनीतिक अधिकार-प्राप्तिके लिए नहीं बल्कि उनकी वर्तमान दशाको सुधारनेके लिए होना चाहिये। इस दलीलमें कितना नैतिक जोश है? अधिकारीवर्गके लोग इतना तो अच्छी तरहसे सोच समझ रहे हैं, कि मजदूरों और किसानोंकी आँखें धीरे धीरे खुल रही हैं और वह ज्यादा दिनोंतक अब उनका इस प्रकार खून चूस नहीं सकते। इसीलिये वह रोते हुए बच्चेकी तरह उनको खिलौनासा देकर टालना चाहते हैं उनके अधिकार नहीं। वह अपनी दयाके रूपमें उनकी थोड़ीसी मजदूरी बढ़ा देना या कुछ अन्य छोटी-छोटी सुविधायें देकर ही पीछा छुड़ाना चाहते हैं। इससे किसानों और मजदूरोंके रोगका निदान कैसे हो सकता है? रोग इतना बढ़ गया है कि क्षणिक इलाज कारगर नहीं हो सकता; पर चूँकि पूँजीपति लोग अपने पुश्तैनी अधिकारोंको सहजमें नहीं छोड़ना चाहते इसीलिये पूँजीपति और श्रमियोंको मिलाये रखनेकी गाथा गायी जाती है, जो सर्वथा अस्वाभाविक है।

किसानोंके सम्बन्धमें भी यही बात है। इनका लगान

कम या आधा करनेका राग गाया जाता है। पर इससे किसानों-का भला कैसे हो सकता है और रोग जड़ मूलसे कैसे नष्ट हो सकता है? जबतक उत्पादनके साधन, भूमि इत्यादिके स्वयं मालिक नहीं होते, वह जमींदारोंके पैरोंके नीचे कुचले जाते रहेंगे। आज तो जमींदार किसानको अपना नोकर-गुलाम ही समझता है। लगानहीको क्या बात है, नजराना, शुकराना-व्यवहारी, जमींदारके लड़के बच्चोंकी शादी, बेगार, बेदखली और मारपीट ये सब दुर्घटनायें व्यक्तिगत सम्पत्तिहीकी तो हैं। यदि किसान जिस भूमिको जोतता, बोता और काटता है, उसका वह स्वयं मालिक होता, तो किसकी मजाल थी, कि उपर्युक्त तरीकोंसे वह लगातार उसके खूनकी एक-एक बूँद चूस लेता, क्या लगान-में कुछ कमी हो जानेसे या आधा हो जानेसे, किसान जमींदार-का असामी नहीं रहेगा। उसके अधिकारमें क्या तरक्की हो जावेगी। जो वर्षोंसे संसारकी आर्थिक स्थितिका अध्ययन कर रहे हैं और जिन्होंने देशके दम तोड़ते हुए किसानोंके सम्बन्धमें कुछ जानकारी प्राप्त की है, उनका तो कुछ दूसरा ही कहना है। अनेक स्थानोंपर तो किसानोंकी यह अवस्था है कि सालभरकी फसल काटनेपर जो कुछ उन्हें प्राप्त होता है वह उनकी सालभर-की (मेहनतकी मजदूरी) और बीज, खाद इत्यादिके खर्चके बराबर भी नहीं होता। ऐसी परिस्थितिमें कुछ लगान कम करने, आधा करनेकी बात, मजाक नहीं तो क्या है। जो लोग सचमुच किसानोंके हितकी लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं, उन्हें इस प्रश्नपर गम्भीरता-पूर्वक विचार करना चाहिये। बातको उड़ा देने या टाल-मटोलसे काम नहीं चल सकता। अभी हमारे पास अवसर

है, हम चाहें तो उसका सदुपयोग कर सकते हैं। कल यह बात नहीं होगी। साम्यवादके प्रचारको धनके जोरसे, पाशविक बलके जोरसे, या काले कानूनोंके जोरसे रोकना कुछ समयके लिए भले ही सम्भव हो। पर जब किसानों और मजदूरोंकी मुसीबतका घड़ा—या यों कहिये कि पूँजीपतियों और जमींदारोंके पापोंका प्याला भर जायगा, तो वह छलकेगा ही—क्रान्ति होगी ही। उसको रुपयेका जोर या कानूनका बल न रोक सकेगा, बुद्धिमानी इसीमें है कि समयकी गतिको पहिचानकर किसानों और मजदूरोंके लाभके विचारसे नहीं तो अपने ही लाभको ध्यानमें रखकर पूँजीपति और जमींदार भाई अपनी व्यक्तिगत सम्पत्तिको समाजके अधीन कर देनेके लिये राजी हो जायँ और भावी देशव्यापी क्रान्तिके दुष्परिणामोंके उत्पन्न होनेकी नौबतको न आने दें। आज साम्यवादियोंपर श्रेणी-युद्धके प्रचार और पूँजीपतियोंके विरुद्ध श्रमियोंको भड़कानेका दोष लगाया जा रहा है। इस दोषारोपणका वही रूप है और वही ढंग है जो सरकारका कांग्रेसवालोंपर राजद्रोहका दोष लगानेमें है। न होगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। यदि लोग सुखी और सम्पन्न हों, उन्हें जीवनको सफल बनानेकी सारी सुविधायें प्राप्त हों, तो किसकी हिम्मत सरकारके विरुद्ध मुँह खोलनेकी होगी। और कोई ऐसी मूर्खता कर भी बैठे तो जिन्हें वह भड़काना चाहता है, वह खुद उस प्रचारकको बेवकूफ बनाकर छोड़ देंगे। हमारे कांग्रेसी नेता सरकारके इस प्रकारके दोषारोपणका यह जवाब देते हैं, वह साम्यवादियोंपर लांछन लगाते हुए किस प्रकार अपनी ही दलीलको भूल जाते हैं। बात एक ही है। जो बात सरकार और

भारत जनताके बीचमें है, वही किसान मजदूर और पूँजीपतियों या उनके एजेन्टों [गुमास्तों] के बीचमें है। शासकवर्ग और पूँजीपति एक ही थैलीके चट्टे-बट्टे हैं। दोनोंमें कुछ अन्तर नहीं है। और यदि है तो यह कि पूँजीपति और जमींदार शासकोंसे भी ज्यादा-खतरनाक हैं। जो बात सरकार नहीं करती या करने जाती है, उसे यह आँख बन्द करके कर डालते हैं और इस प्रकार कांग्रेसकी जड़को और भी मजबूत कर देते हैं या यों कहिये कि यदि एक नागनाथ हैं तो दूसरे साँपनाथ हैं। इसी लिये लोगोंको ऐसी थोथी दलीलोंकी ओर ध्यान ही न देना चाहिये; साम्यवादी लोग कांग्रेसमें फूट नहीं डालना चाहते और न वे कोरे आदर्शवादी ही हैं वह तो व्यावहारिक ही बातें कहते हैं, ऐसी बातें जो सम्भव हैं। असम्भव बातें वह लोग कहते हैं जो तेल और पानीको मिलाये रखना चाहते हैं, जो व्यावहारिक नहीं हैं। पूँजीपति और श्रमी इन दोनोंकी बिलकुल तेल और पानी-हीकी दशा है और आजसे नहीं सदियोंसे, सृष्टिके आरम्भसे ही इन वर्गोंका संघर्ष होता रहा है। इस संघर्षको रोकनेका एकमात्र उपाय वर्ग-भेदको मिटाना ही है, वर्गोंको बनाये रखते हुए उनका भेद मिटानेकी बात कहना या दूसरोंपर भेद पैदा करनेका दोष लगाना न बुद्धिमानीकी बात है और न व्यवहारकी। साम्यवादका एकमात्र ध्येय वर्गहीन समाजका निर्माण है।

———❀❀❀❀———

साम्यवाद और उत्पत्ति के साधन

हमारे वर्तमान समाजका अस्वाभाविक संगठन

[लेखक—श्रीयुत सेठ दामोदर स्वरूप]

यह बात सभी जानते हैं कि हमारे मनुष्य-समाजका जो वर्तमान ढांचा है, उसमें उन श्रमियों और किसानोंकी दशा, जो संसारकी प्रत्येक वस्तुको उत्पन्न करते हैं, उस बेकार श्रेणीके लोगोंकी हालतसे, जो न केवल किसी प्रकारका श्रम ही नहीं करते, बल्कि मज़दूरों और कृषकोंके गाढ़े पसीनेकी कमाईसे निशिदिन गुलछर्रे उड़ाते हैं और जो वास्तवमें समाज-रूपी शरीरके कोढ़ाङ्ग हैं, हजार दर्जा गयी गुज़री है। एक मज़-दूर किसी प्रकार दिन रात परिश्रम करके अपना शोणित-पसीना एक करके विविध प्रकारकी वस्तुओंको तैयार करता है, पर जो चीजें वह तैयार करता है उनपर उसका कोई अधिकार नहीं है। वह मजदूर बड़े बड़े विशाल महलोंको बनाता है। उन महलोंको अपनी बनायी हुई अनेक प्रकारकी सुन्दर सुन्दर वस्तुओंसे सुस-ज्जित करता है; पर उसका न उस महलपर कोई अधिकार है

और न उसकी सजावटकी सामग्रीहीपर। उसके भाग्यमें तो वही छोटीसी अन्धी कोठरी है, जिसमें उसे न शुद्ध-पवित्र वायु मिल सकती है और न सूर्यकी रोशनी। सजावटकी सामग्रीकी तो बात ही क्या है, वहाँ तो रोजाना जरूरतोंको पूरा करनेकी आवश्यक वस्तुयें भी नहीं मिलतीं, किसी सफ़ाई पसन्द आदमी-को तो वहाँ एक मिनट ठहरना भी कठिन हो जायगा। यही मजदूर शीशेकी तरह साफ़ और सुन्दर सड़कें बनाता है; पर उसके कार्टरकी सड़कोंको तो सड़क कहना भी कठिन है। इसी तरह एक किसान दुनियाँकी अच्छीसे अच्छी खानेकी वस्तुएँ, बढ़िया अनाज; फल-फूल, दूध-दही, घी-मक्खन और मिठाइयाँ तैयार करता या तैयार करनेका कारण है, पर वह और उसके बीवी बच्चे सुगमतासे अपना पेट भी नहीं भर सकते। पर उस किसानकी कमाईसे जो धनी बने बैठे हैं और रत्तीभर भी काम नहीं करते वे केवल इन बढ़िया बढ़िया खाद्य पदार्थोंका स्वाद ही नहीं लेते, बल्कि उनका आवश्यकतासे कहीं अधिक उपयोग कर औषधियोंद्वारा उनको हज़म करते तथा करनेकी निशिवासर कोशिश किया करते हैं।

यह संक्षेपमें हमारे वर्तमान मनुष्य-समाजका रूप और उसका ढाँचा है—जहाँ न्याय और धर्मकी छाया भी ढूँढे नहीं मिलती है। बड़े बड़े ईश्वरवादी भी समाजके इस ढाँचेको देख-कर और थोड़ा विचारकर अपने कानोंपर हाथ रख लेते हैं और उन्हें यह विचारना पड़ता है कि वास्तवमें ईश्वर है और यदि है तो क्या वह स्वयं न्याय या न्यायकारी है? पर नहीं, ईश्वर बेचारेका क्या अपराध है। अब तो धनने, पूँजीने ईश्वर-

को उठाकर ताकपर रख दिया है और समाजमें न्याय और धर्मका प्रायः लोप हो गया है; क्योंकि जो जितना अधिक परिश्रम करता है, उतनाही दुःखी और उसकी आर्थिक और सामाजिक दशा उतनीही गिरी हुई है। शिक्षा और सभ्यताकी दौड़में वह उतनाही पीछे है। राजनीतिक क्षेत्रमें तो उसे कोई अधिकार प्राप्त ही नहीं है। दूसरी ओर जो रत्ती भर भी काम नहीं करते या नाममात्रको काम करते हैं, उतनीही अधिक अच्छी आर्थिक और सामाजिक दशा है, राजनीतिक अधिकारोंके तो वे सर्वेसर्वा हैं ही। यहाँ एक बात ध्यानमें रखने योग्य है। वह यह कि हमारे इस समाज में अत्यधिक संख्या उन लोगोंकी है, जो निरन्तर कठिन परिश्रम करते हैं। बैठे २ खाने और मौज उड़ाने वाले तो इनकी संख्याके सामने उँगलियों पर गिने जा सकते हैं। नतीजा यह निकलता है कि परिश्रम करने वालोंकी पतित और दीन-हीन अवस्थाके कारण हमारे समूचे राष्ट्रका आर्थिक, नैतिक तथा सामाजिक पतन बड़ी तेजीसे बढ़ता जारहा है।

अब यह प्रश्न उठता है कि देशकी बहुसंख्या मजदूर, और किसान हैं, और वास्तवमें अपने कड़े परिश्रमसे वे सबकुछ उत्पन्न करते हैं, तो वे थोड़ेसे धनी लोगोंके किस प्रकार गुलाम बनेहुए हैं और क्यों इन मुट्ठीभर लोगोंके हाथों चुपचाप इस प्रकार अन्याय और अत्याचार सहन करते हैं ?

इसमेंतो सन्देह नहीं है कि मजदूरों और किसानोंकी संख्या न केवल हमारेही देशमें बल्कि संसारभरमें अत्यधिक है और हर देशमें वह धनी लोगोंके हाथों तबाह और बर्बाद हो रहे हैं।

ईश्वर और मजहबके नामपर (सम्प्रदाय धर्म नहीं है, जैसा

कि श्री सम्पूर्णानन्दजीने 'जागरन' में अपने एक लेख द्वारा बताया है) मजदूरों और किसानों पर अन्याय और अत्याचार किये जाते हैं। ऊपरके प्रश्नका उत्तर इस प्रकार है—प्रथम तो अशिक्षित होने और संसारकी वस्तुस्थितिका ज्ञान प्राप्त न कर सकनेके कारण, उन्हें यह अनुभव ही नहीं होता कि धनी श्रेणीके लोग उनके साथ अन्याय और अत्याचार करते हैं। इस अनुभवको रोकनेका तो पूँजीपतियोंने पहले ही प्रबन्ध करलिया है। पूँजीपतियों और मजहबी मुल्लाओं और पुरोहितोंका सदाही परस्पर बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और यह एक दूसरेकी सहायताहीसे अपने स्वार्थोंको सिद्ध करते हैं। पूँजीपति लोग यह समझ सकते हैं कि कभी न कभी मजदूर और किसान यह अनुमान करसकते हैं कि वही लोग उनकी सारी विपत्तियोंकी जड़ हैं। यह समझमें आतेही वह बहुसंख्यक होते हुए क्षण-मात्रमें अपनी विपत्तियोंके स्रोतको नष्ट-भ्रष्ट कर सकते हैं। अतः उन्होंने पुरोहितों और मुल्लाओंके सहयोगसे अवश्यम्भावीको रोकनेका ढंग निकाला। मजहब और ईश्वरके यह ठेकेदार आरम्भसेही मजदूरों और किसानोंको यह पाठ पढ़ाते हैं कि संसारमें सुख-दुःख तो अपने हाथकी बात नहीं है। यह तो ईश्वरकी मर्जी और तकदीरका खेल है। ईश्वरने अपनी मर्जीसे या तुम्हारे पूर्व जन्मके बुरे कर्मोंके फलस्वरूप तुम्हें यह कष्ट दिये हैं, जिनका चुपचाप सहन करना ही तुम्हारा धर्म है। यह मनुष्यके हाथकी बात नहीं है। ईश्वरकी इच्छा या कर्म-फलोंके विरुद्ध कार्य करनेका परिणाम तुम्हारे संकटोंको और भी बढ़ायेगा। हाँ अगर चुपचाप ईश्वरपर भरोसा रखकर सबकुछ सहते रहोगे, तो अगले जन्ममें शायद

(शायद इसलिये कि ईश्वर अनन्त है और उसकी इच्छा भी अनन्त है और फिर यह भी सम्भव है कि एक जन्मके बुरे कामोंके फल कई जन्मोंतक भोगने पड़ें) सुख मिले। खुदा मजहब, और कर्म-फल या तकदीरके इस चक्करमें फँसकर यह भोले-भाले मजदूर किसान अपने साथ होनेवाले अन्याय और अत्याचारकी जड़को खोजनेका प्रयत्नही नहीं करते। यदि पूँजीपतियोंकी सहायताके लिए पुरोहित और मुल्ला लोग न होते तो अबतक किसान और मजदूर कभीके चेत गये होते। इसीलिए पूँजीपति मजहबी प्लेटफार्मोंसे, मन्दिरों, मसजिदों और गिरिजाओंसे इसी प्रकारकी मनगढ़न्त बातोंका प्रचार कराते हैं। मजहबी आचार्योंको हजारों और लाखों रुपये देकर उनके सहयोगसे एक अपवित्र गुट बना लेते हैं, यह गुट किसान मजदूर दोनोंको बराबर गुलाम बनाये रखनेकी कोशिश करता रहता है। किसान और मजदूर अशिक्षित होनेके कारण मुल्ले और पुरोहितोंके इस फरेबको न समझकर उसके जालमें फँसते रहते हैं। ये बेचारे इतना सोचनेमें भी असमर्थ रहते हैं कि क्या वह सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक ईश्वर, जिसकी वह सन्तान हैं इतना अन्यायी भी हो सकता है कि वह अपनी मेहनत करनेवाली संतानकी अत्यधिक संख्याको इस प्रकार भूखों मारेगा और थोड़ेसे आलसी लोगोंको इस प्रकार सुखी और सम्पन्न बनाकर उन्हें संसारके सारे भोग-विलासका स्वामी बना देगा। वह कभी नहीं विचार करते कि क्या मनुष्योंकी इतनी अधिक संख्याने पिछले जन्ममें इतने बड़े पाप किये थे कि वह और उनकी सन्तान तो साधारण शिक्षा भी प्राप्त न कर सकें और मुट्ठीभर पूँजीपतियोंने पिछले जन्ममें इतने बड़े तप

और त्याग किये कि वह विश्वकी सम्पूर्ण शक्तियों और सुविधाओं को हथियाये हुए हैं। सच बात तो यह है कि, यदि प्रारम्भसे ही मजदूर किसानोंको उचित शिक्षा-दीक्षा मिली होती और ईश्वर मजहब और तक़दीरके पवित्र शब्दोंका इस प्रकार दुरर्थ न किया होता, तो संसारमें आज न पूँजीवादका इतना जोर होता और न साम्यवादके प्रचारका। पर यहाँ तो चोरकी दाढ़ीमें तिनका वाली बात थी। पूँजीपति यह समझते थे कि सच्ची शिक्षा मजदूरों और किसानोंकी आँखें खोल देगी और वे अपने मित्र और शत्रु तथा हानि और लाभमें तमीज करने लगेंगे, इसीलिये उन्होंने उनके बीच सच्ची विद्याका प्रचार न कर पाखण्डका प्रचार किया। इसीका परिणाम है कि आज कठोर श्रम करने वाले किसान और मजदूर दरिद्र हैं, अशिक्षित हैं, नीच हैं, और गुलाम हैं। पैसे वाले धनी हैं, धर्मात्मा हैं, शिक्षित हैं, और सब तरहके कुकर्म करते हुए भी समाजमें आदर मानके पात्र हैं। ऐसा है ढाँचा आजकलके हमारे मनुष्य समाजका, जिसमें धनही केवल एकमात्र शक्ति है, धन ही धर्म है और यह कहना अत्युक्ति न होगा कि ईश्वरका स्थान भी धनहीने लेलिया है। ईश्वरका नाम तो नाममात्रहीको रहगया है। परिश्रमसे, ईमानदारीसे, बिना किसीको कष्ट पहुँचाये, समाजकी सच्ची सेवा करके आधे पेट खाने वाला किसान या मजदूर नीच है, जलील है, अछूत है, और तिरष्कारके योग्य है। वह मन्दिरोंमें देव-दर्शन भी नहीं कर सकता, सार्वजनिक कुओंसे पानी भी नहीं पी सकता। पर हाँ, गरीबोंका खून चूसकर बेईमानीसे, फ़रेबसे, बिला परिश्रमके, जरूरतसे ज्यादा खाने और उड़ाने वाला, दुनियाभरके पाप करनेवाला धनी

मालिक है, आक़ा है, स्वामी है और समाजका नेता है, राजा है, और अपने सामने मनुष्योंकी जरखरीद गुलामोंकी तरह गर्दनें झुकवाता है, नहीं नहीं साष्टांग प्रणाम कराता है। यह सब स्वांग और निन्दनीय नाटक सदियोंसे खेले जा रहे हैं और खेले जाते रहेंगे, जब तक कि संसारके सारे किसान और मजदूरोंकी प्रचार द्वारा आँखें नहीं खोल दी जाती हैं। यह प्रश्न किया जा सकता है कि आजकल तो बहुतसे किसान और मज़दूर इस सत्यको समझने लगे हैं कि वह ईश्वरके कोप, तकदीरकी खराबी अथवा अपने पापोंके फलस्वरूप नहीं, बल्कि पूँजीपतियोंके अन्यायका शिकार हो रहे हैं, फिर भी वह इस अन्यायको किस प्रकार सहन करते हैं? इसका उत्तर यही है कि हमारे वर्तमान समाजका यह ढाँचा ही इस प्रकार बन गया है कि वह उपरोक्त अन्यायको रोक ही नहीं सकता क्योंकि इस समाजमें धनकी उत्पत्तिके, वितरण और विनियमके सारे साधन एक विशेष श्रेणीके हाथमें आगये हैं, और वे सहजमें अपनी मर्जीसे उन्हें छोड़नेको तैयार नहीं हैं। अतः जबतक पुनः निर्माण समाजका इस प्रकार न हो कि उपरोक्त सम्पूर्ण साधन उत्पादक श्रेणीके हाथमें आ जायें, तब तक वास्तविक स्थितिमें परिवर्तन असम्भव है। इसी परिवर्तनका नाम साम्यवाद होगा। और जब इस प्रकारके समाजका निर्माण हो जावेगा, तो वही Socialist State या साम्यवादी राज होगा।

उत्पत्तिके साधनका अर्थ।

उत्पत्तिके साधनका अर्थ उन वस्तुओंसे है, जिनके द्वारा दूसरी चीजोंकी उत्पत्ति होती है। जैसे अनाज, फल-फूल, कपास, तिलहन इत्यादि—खानेकी और दूसरी आवश्यक चीजोंकी उत्पत्ति

बिना पृथ्वीके नहीं हो सकती। छपाईकी पुस्तकें और समाचार पत्र इत्यादि बिना छपाईकी मशीनके, कपड़ा बिला बड़ी २ मिलों और कारखानोंके पैदा नहीं हो सकते। पर उत्पत्तिके यह सब साधन ज़मीन, मशीनें और कल-कारखाने, धन इत्यादि सब वर्तमान समाजमें एक विशेष श्रेणीके मिलकियत होगये हैं, जिनको ज़मींदार कारखानादार या पूँजीपतिके नामसे पुकारा जाता है। इसलिये करोड़ों किसान और मजदूरोंको लाचार होकर इनलोगोंकी गुलामी करनी पड़ती है और उनके हाथों अन्यायको सहन करना पड़ता है, क्योंकि उत्पत्तिके इन साधनों पर अधिकार प्राप्त किये बिना किसान या मजदूरकी मेहनतका फल उसे नहीं मिलता उसका फल तो उन साधनों पर अधिकार रखने वालेको पहुँचता है। वह इन भूखों और बेबसोंकी मेहनत मनमानी मजदूरी देकर खरीद लेता है। एक समय था कि जो उत्पत्तिके यह साधन न तो इतने महँगे थे और न इतने पेचीदा। किसी समय एक लोहार अपनी छोटीसी दूकानमें पुरानी चालके मामूली औजारोंसे अपना काम चला लेता था। दर्जी हाथसे कपड़े सी लेता था और किसान फसल अच्छी होने पर थोड़ीसी जमीनसे अपना और बीबी बच्चोंका पेट भर लेता था।

मजदूरोंके गुलामीका प्रारम्भ।

परन्तु अठारहवीं शताब्दीकी औद्योगिक क्रान्तिने पुरानी चालके मामूली औजारोंको एक प्रकारसे बेकार कर दिया। इस विश्वव्यापी क्रान्तिके फलस्वरूप वाष्पयन्त्र, तरह-तरहकी कताईकी मशीनें और पावरलूमकी ईजाद हुई। यह मशीनें पुरानी चालकी मशीनोंके मुकाबिलेमें थोड़े समयमें अच्छा और अधिक माल

तैयार कर लेती थीं। पर थीं यह बड़ी महँगी। इसलिये जिनके पास प्रचुर धन था, वे ही इनको बनवा या खरीद सकते थे। दूसरे शब्दोंमें इस औद्योगिक क्रान्तिने उत्पादनके तरीकोंमें हलचल मचा दी और उन्हें बिलकुल बदल दिया। साथ ही जो मजदूर इन मशीनोंके चलानेमें लगे थे, उनके जीवनमें भी बड़ा भारी परिवर्तन होगया। धीरे धीरे कारीगरोंके औजार बेकार हो गये और उद्योग-धन्धोंको पूँजीपतियोंने हथिया लिया। शीघ्र ही इन लोगोंने उत्पत्तिके अन्य साधनों पर भी अपना अधिकार जमा लिया। पहले यह प्रयोग कपड़ेके व्यवसाय पर हुआ। धीरे धीरे दूसरे सब व्यापार भी इसी क्रान्तिके प्रभावमें आगये। पुराने छोटे-छोटे उद्योग-धन्धे नष्ट होगये। छोटे छोटे कारीगरोंकी स्वतन्त्रता समाप्त होगई। और नये गुलाम मजदूर वर्गका जन्म हुआ। इस प्रकार औद्योगिक संसारमें दो नवीनदल पैदा होगये। एक वह दल जिसके हाथमें उत्पत्ति, वितरण और विनियमके साधन थे, जिनके कारण वे लोग स्वामी बन बैठे और दूसरा दल उन मजदूरोंका, जिनका सब कुछ छिन गया था, और जो अपनी मेहनत बेचनेके लिये मजबूर होकर गुलाम बन गये।

किसानोंकी गुलामी।

ऊपर हम लिख चुके हैं, कि किसी जमानेमें एक मजदूर थोड़ीसी जमीन पर खेती करके साधारणतः अपना पेट भर लेता और अपनी दूसरी जरूरतोंको भी पूरा करलेता था। औद्योगिक क्रान्तिके फलस्वरूप खेती-बाड़ीके लिये भी नयी नयी मशीनें, खेत जोतने बोने और काटनेके लिये तैयार होगयीं और मशीनोंकी तरह यह भी मशीनें जल्द और अधिक काम करती थीं, पर थीं

ये भी वैसी ही महँगी। ये लाभदायक तभी सिद्ध होती थीं जब इनके रखनेवालेके पास अधिक काम हो और वह बराबर इनसे काम लेता रहे। थोड़ीसी जमीनके मालिकके लिए तो ये बहुत थोड़े समय काममें आ सकती थीं। अधिक समय बेकार रहतीं और खर्च भी बहुत होता था। इसलिये जिन लोगोंके पास बड़ी-बड़ी जमींदारी थी, काफी धन भी था, उन्होंने ही इन मशीनों-को खरीदकर इनसे काम लिया। इनमें उनकी जमीनकी पैदावार बहुत बढ़ गयी। खर्च घट गया और बाजारमें अनाजका भाव गिर गया। वे छोटे-छोटे किसान जो रात-दिन मेहनत करते थे, उनका काम मशीनके एक घण्टेहीके बराबर होता था और वे अपनी पैदावारसे अपनी दूसरी जरूरतोंका पूरा करना तो क्या पेट भरनेमें भी समर्थ नहीं रहे। वही दशा उनकी हुई, जो मजदूरोंको हुई थी। अर्थात्—उन्होंने भी लाचार होकर अपनी मेहनतको जमींदारोंके हाथ बेचना स्वीकारकर लिया। जिन्होंने यह न किया, या न कर सके, वह शहरोंके कारखानोंमें अपनी मेहनत बेचने लगे। इस प्रकार अठारहवीं शताब्दीकी औद्योगिक क्रान्ति ही किसानों और मजदूरोंको गुलामीकी जिम्मेदार है।

कांग्रेसके समाजवादी दल के आलोचकोंको उत्तर

[लेखक—जयप्रकाश नारायण]

हमारे सामने एक समस्या, कांग्रेसके साथ हमारे सम्बन्ध की है। यह सीधी-सी है और आसानीसे हल हो सकती है। पहले तो हमारा सङ्गठन कांग्रेसके अन्दर है। इसी बातसे हमारा सम्बन्ध बहुत हदतक निश्चित हो जाता है। जब हमारा सङ्गठन कांग्रेसका अङ्ग है तो विरोध या मुखालिफतका कोई सवाल ही नहीं है; बल्कि हमारे संघको तो कांग्रेसके कार्य-क्रममें, उन बातोंको छोड़कर जिनमें हम कांग्रेसकी किसी खास नीतिसे असहमत हों, भाग लेना और उसे अपना ही समझना चाहिये। साथ ही कांग्रेसके अन्दर अपने विचारोंका प्रचार करना, अपने तरीकेपर काम करना और कांग्रेसकी ऐसी नीतियोंकी जो हमको जनताके हितकी न जंचे, समालोचना और विरोध तक करना—हमें अपने इन अधिकारोंको अल्प-संख्यक दलकी हैसियतसे काममें लाना चाहिये।

मैं कुछ उस टीका-टिप्पणीके सम्बन्धमें कह देना चाहता हूँ जो हमारे खिलाफकी गई है। टीका-टिप्पणी उग्र और नरम दोनों ही पक्षोंने की है। बहुत-सो समालोचनाका कारण गलतफहमी

और हमारे आन्दोलनको ठीक तरहसे समझनेकी कमी रही है। दाहिने पक्षका कहना है कि हम लोग कांग्रेसमें फूट पैदाकर रहे हैं, राष्ट्रीय युद्धको कमजोर बनाते हैं और सिर्फ बातें करते हैं। फूटके सम्बन्धमें यह समझ लेना आवश्यक है कि हरएक सङ्गठन-को सङ्कटोंमेंसे गुजरना पड़ता है और उसकी प्रकृतिका विकास और परिवर्तन हुआ करता है। कांग्रेसके अन्दर फूट डालनेकी आवाज भी पहली ही बार नहीं उठी है। यदि समाजवादी आन्दोलनके कारण 'नरम विचारवाले' और दूसरे 'बरसाती देशभक्त' कांग्रेसको छोड़ जाते हैं तो उसको नुक़सानकी बजाय फ़ायदा ही होगा। रही राष्ट्रीय युद्धको कमजोर बनानेकी बात, उसके सम्बन्धमें हम तो यह समझते हैं कि कमजोर करना तो बहुत दूर, हमारा आन्दोलन तो एक वास्तविक सार्वजनिक आन्दोलन खड़ा करनेके लिये आधार तैयार करके राष्ट्रीय युद्धको खूब मजबूत करेगा और उसे आगे बढ़ायेगा। हम सिर्फ बातून हैं—इसका जवाब देना मैं बेकार समझता हूँ। हम लोगोंने राष्ट्रीय युद्धके गहरे घमासानमें उतना ही भाग लिया, जितना किसी भी दूसरे समुदायने। मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि जिम्मेदार कांग्रेसवालोंको इस तरहकी टीका-टिप्पणीमें दिलचस्पी लेना कोई शोभा नहीं देता।

उग्र समालोचकोंने हमारे असली सवालोंको ठीक तरहसे समझनेमें खास तौरसे कमी की है। इस पक्षकी ओरसे मुख्य समालोचना यह की गयी है कि कांग्रेसके अन्दर संघ बनाना गलती है। समाजवाद और कांग्रेस इन शब्दोंको एक दूसरेका मुखालिफ कहा जाता है; लेकिन हिन्दुस्तानकी अपनी खास

परिस्थितिमें इन दोनोंका मुखालिफ होना तो दूर, बल्कि दोनों परस्पर सहायक और आश्रित हैं। साम्राज्यवादके अन्तके बिना समाजवाद मूर्खताकी बात है। इस देशमें राष्ट्रीय महासभाही एक ऐसी राजनीतिक संस्था है, जिसने ब्रिटिश साम्राज्यके खिलाफ बड़े-बड़े युद्ध चलाये हैं और यह सोचनेकी कोई वजह नहीं मालूम पड़ती कि वह इस मञ्जिलपर अपने इस साम्राज्यवाद विरोधी कार्यक्रम को त्याग देगी। मेरा मतलब यह नहीं है कि कांग्रेस, जैसी अवस्थमें इस समय है, वह साम्राज्यवादको उखाड़ सकेगी। यही काम तो हमारा है। हमको कांग्रेसका विकास इस तरह करना चाहिये कि वह ऐसी ही संस्था बन सके। कांग्रेसके बाहर संघको कायम करनेका दूसरा रास्ता अगर वह सम्भव भी हो, तो शक्तिको बेवकूफीके साथ बुरी तरह बरबाद करना है। मुझे जरा भी सन्देह नहीं है और मैं विश्वास करता हूँ कि आपमेंसे भी किसीको न होगा, कि हमारे लिये कांग्रेसपर ऐसा प्रभाव डालना और उसमें ऐसी तबदीली करना कि वह वाकई साम्राज्यवाद विरोधी संस्था बन सके, बिलकुल सम्भव है। जिन लोगोंका यह विश्वास नहीं है उनके लिये हमारे इस आन्दोलनमें निश्चय ही कोई स्थान नहीं है।

कांग्रेस समाजवादी संघ किसी एक दलका संघ नहीं है। वह सिर्फ मजदूरोंका भी संघ नहीं है। वह ऐसा राजनीतिक संघ है जिसके प्लेटफार्मपर सभी साम्राज्यवाद-विरोधी मिल सकते हैं, और उसका कार्य ऐसे सभी लोगोंको साम्राज्यवादको उखाड़ फेंकनेके लिये मार्ग दिखाना और हिन्दुस्तानमें जनताके लिये सच्चा स्वराज्य कायम करना है।

क्या समाजवादी गांधीजी पर खड्गहस्त हैं ?

[लेखक—श्री सम्पूर्णानन्द]

'आज'के विशेषांकमें मैंने जो लेख लिखा था उसकी जो आलोचना श्रीगहमरीजीने की है उसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूँ क्योंकि इसी बहाने मुझे समाजवादी समुदायका दृष्टिकोण फिरसे जनताके सामने रखनेका अवसर मिलता है। गहमरीजीके कई आक्षेप ऐसे हैं जो समाजवादके जन्मसे ही उसपर किये जा रहे हैं, भारतमें भी कांग्रेस समाजवादी दल पिछले सवासालसे उनका उत्तर देता चला आ रहा है, फिर भी जब गहमरीजी जैसा विचारशील व्यक्तियोंको उन्हें उठानेकी आवश्यकता प्रतीप होती है तो उनके सम्बन्धमें पुनः कुछ लिखना पढ़ना आवश्यक नहीं हो सकता।

गहमरीजी कहते हैं कि मैं महात्माजीपर खड्गहस्त हूँ। मैं जानता हूँ कि उनका यह आशय नहीं है कि मैं महात्माजीके व्यक्तित्वका विरोधी हूँ। यह बात है भी नहीं। वह इस देशकी महती विभूति हैं, इस नाते मैं उनका आदर करता हूँ। परन्तु वह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मुझ जैसे लोगोंकी सम्पत्तिसे अब उस युगका अन्त होना चाहिये जिसका प्रवर्तन महात्माजीके

द्वारा हुआ था। लोग पूछते हैं कि समाजवाद कहाँतक गान्धीवाद-का विरोधी है। इस प्रश्नका उत्तर गान्धीवादकी परिभाषापर निर्भर है। यदि गान्धीवादका अर्थ सौजन्य, आत्मसंयम, शौर्य्य, आत्मोत्सर्ग है तो समाजवाद उसका सदैव आदर करेगा। यदि गान्धीवादका अर्थ अहिंसा है तो समाजवाद उसको नीतिके रूपमें स्वीकार करता है। समाजवादी हिंस्र पशु नहीं होता। वह भी शान्ति चाहता है पर यदि आवश्यक और सम्भव हो तो शस्त्र प्रयोगको सर्वथा त्याज्य नहीं मानता। यदि गान्धीवादका अर्थ मशीनोंका बहिष्कार है तो समाजवादमें उसके लिये स्थान मिलना कठिन है और अन्तमें, यदि गान्धीवादका अर्थ वर्गबाहुल्य और वर्गसहकार है तो समाजवाद उसको कदापि स्वीकार नहीं कर सकता। यह 'यदि' योंही नहीं लिख दिया गया है। स्वयं महात्माजी ऐसा कह चुके हैं कि उनका स्वराज्य रामराज्य होगा जिसमें राजा और रंक दोनों सुखसे रह सकेंगे। समाजवादीके स्वराज्यमें न राजा होगा न रंक। अतः इस दृष्टिसे प्रत्येक समाजवादी गान्धीवाद और उसके प्रतीक गान्धीजीपर खड्गहस्त कहा जा सकता है। फिर समाजवादी ऐसा भी मानते हैं कि जिन लोगोंके हाथमें इस समय कांग्रेसका नेतृत्व है वह वर्ग-सहकारके पक्षपाती अथच सम्पन्न वर्गोंके हितोंके पूर्ण-रक्षक अर्थात् असम्पन्नों और शोषितोंके हितोंके रक्षणमें असमर्थ हैं। इसलिये पदे-पदे उनके दिमागमें सुलह समझौतेकी बात आ जाती है। यदि कांग्रेसके अन्दर उन वर्गोंका उचित प्रतिनिधित्व हो जो स्वभावतः क्रान्तिकारी हैं तो उसकी कार्यशैली बदल जाय। इन वर्गोंके प्रवेशका अर्थ होगा नेतृत्वका बदल जाना। समाजवादी दल यह परिवर्तन चाहता

है अतः लक्षणया वह महात्माजीपर खड्गहस्त कहा जा सकता है।

मैंने एक जगह तो यह कहा है कि कृषकादि शोषितोंके संघटनका आयोजन नहीं हो रहा है, जिसका तात्पर्य यह निकला कि युद्धके लिये तैयारी नहीं हुई है, दूसरी ओर मैंने गान्धी-अर्विन या इस प्रकारके अन्य समझौतोंका विरोध किया है। इसमें गहमरीजीको विरोधाभास देख पड़ता है। यदि विरोध है तो इसमें मेरा कुसूर नहीं है। आलोचकका काम वस्तुस्थितिको सामने रखना है। यदि वह वस्तुस्थिति तर्कशास्त्रके नियमोंका पालन नहीं करती तो इसमें आलोचकका कोई दोष नहीं है। हम ऐसा मानते हैं कि पूर्ण स्वाधीनताकी प्राप्ति या साम्राज्यशाहीके मूलोच्छेदके लिये जिस तैयारीकी आवश्यकता है वह न थी, न है। परन्तु बिना इस तैयारीकेही पूर्ण स्वाधीनताके नामपर लड़ाई छेड़ दी गयी। उसमें सफलता नहीं मिली। क्यों नहीं मिली, यह भी विचारणीय है पर यहाँ मैं इसपर विचार नहीं करता। पर सफलता न मिलनेपर क्या करना चाहिये था? क्या आजतक किसी भी स्वाधीनताके नामपर लड़नेवाले समुदायने ऐसा ओछा सौदा किया है? ओछा सौदा इसलिये कहता हूँ कि जिन शर्तोंपर सुलह की गयी वह आयरलैण्ड और मिश्रकी सुलहकी शर्तोंके सामने लज्जाजनक और हास्यास्पद है। सुलह नहीं करनी चाहिये थी। कांग्रेस भले ही गैरकानूनी बनी रहती, जो असली तैयारी थी उसमें लगना चाहिये था। फिर मौका आता, फिर कोई नया आन्दोलन खड़ा होता। यह सुलह और समझौता करके अस्थायी शान्ति मोल लेनेकी बुरी प्रवृत्ति सर्वथा हेय है। इस दृष्टिसे

विचार करनेसे मेरी बातोंमें विरोध नहीं रह जाता। यदि रह जाता है तो वह इसलिये कि जीवन तर्कसे बड़ा है। बिना तर्क-शास्त्रसे सलाह लिये ही लड़ाई छेड़ी और फिर बन्दकर दी गयी। ऐसी दशामें विरोधाभासकी दुहाई देना व्यर्थ है।

गहमरीजी मुझसे पूछना चाहते हैं कि जिस प्रकारकी बात हम समाजवादी करते हैं, अर्थात् स्वराज्य हो जानेके पहले पूँजी पति आदि वर्गोंसे लड़ाई ठान लेना, यह कहीं अन्यन्त्र हुई है? इसका उत्तर मैं एक प्रश्नसे देना चाहता हूँ—क्या जैसी परिस्थिति भारतमें है उसमें कोई दूसरा देश स्वतन्त्र हुआ भी है? यह तो गहमरीजी जानते हैं कि भारत जैसे देशोंको 'अर्ध-औपनिवेशिक' कहते हैं। इनमें स्वदेशी पूँजीपतियोंको मिलाकर विदेशी पूँजी-पति शासन करते हैं। एक और कठिनाई है। अभी यहाँ राजे महाराजे भी मौजूद हैं। ऐसी दशामें यहाँ यह देखना ही होगा कि कौनसा वर्ग पूर्णतया क्रान्तिकारी है और हो सकता है। यह वर्ग वही होगा जो समन्तात शोषित और दलित है और इसको आगे बढ़ाने या साथ लेनेका अर्थ है दूसरे वर्गोंसे संघर्ष मोल लेना। यह बात तो गहमरीजीके समझमें आती है कि देश और विदेशकी सारी पुरानी प्रथा, सारे पुराने अनुभवको भुलाकर भारत मनसा वाचा कम्मर्णा 'सत्य और अहिंसा' का अवलम्बन करके स्वतन्त्र होनेका प्रयत्न करे, पर यह वह नहीं देखते कि वर्तमान राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिमें वह सर्ववर्ग-सहकारका मार्ग छोड़कर ही अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकेगा। किमाश्चर्य्यमतः परम्? यह न केवल अनावश्यक वरन् अनुचित भी है कि प्रत्येक राष्ट्र लाठीसे तोपतक पहुँचनेमें उतनाही समय लगावे जितना समय

आरम्भसे तोपके आविष्कार तक लगा है। समाजवादी मार्गका तो नई सरकारकी स्थापनाके पहिले, और पीछे और कहीं नहीं तो रूसमेंही सही, कुछ उदाहरण मिलता भी है, सत्य और अहिंसाका तो कहीं कभी भी कोई उदाहरण नहीं मिलता। जब नया प्रयोग ही करना है तो हमारा प्रयोग क्यों न किया जाय जो अधिक तर्कसंगत है ?

समाजवादी और रचनात्मक कार्यक्रम।

रचनात्मक कार्यक्रमके सम्बन्धमें श्री भगवानदासजीने गह-मरीजीको कुछ उत्तर दिया है। हमारा उत्तर अंशतः उससे भिन्न है। वह तो यह भी, वह भी माननेको तैयार हैं। हम तो यह कहते हैं—हमारा कार्यक्रम ही, दूसरा बिल्कुल नहीं। कारण स्पष्ट है। समाजवादियोंका तो दृढ़ विश्वास है कि राजसत्ता अपने हाथमें आनेके पहिले रचनात्मक काम नहीं हो सकता। बिना जमींदारी, मालगुजारी लगान आदिके कानूनोंको एकदम बदले ग्राम-सुधारका नाम लेना प्रतारणामात्र है। कुछ ऐसाही समझकर महात्माजीकी सलाहसे श्री राजगोपालाचारी उसी असेम्बली द्वारा हरिजनोंके लिये कानून बनवाये गये थे, जो इन महानुभावोंको आँखोंमें शैतानका घर थी। हमारी सारी चेष्टा शक्तिसंचयके लिये ही होनी चाहिये। जो प्रयत्न, जो आन्दोलन इस काममें सहायक नहीं है वह व्यर्थ ही नहीं, हानिकारक भी है। जिस भारतको आज जबरदस्ती इतनी महँगी सरकारका बोझ उठाना पड़ रहा है, जिसको फौज, पुलिस, अदालत, शिक्षालय आदि पर करोड़ों रुपया खर्च करना पड़ रहा है, जिसको करोड़ों रुपया विदेश भेजना पड़ता है, वह कोई रचनात्मक काम नहीं कर

सकता। धार्मिक सुधारतकके लिये सिक्खोंको सरकारसे टक्कर लेनी पड़ी थी। जिधर जाइये द्वार बन्द है। अतः हमारा काम है अपने उस एक लक्ष्यके लिये प्रत्यक्ष प्रयत्न करना। इसके लिये सुधारक मनोवृत्ति घातक है। उन मनोवृत्तियोंको बराबर दूर करना होगा।

हमारा यह काम है कि श्री भगवानदासजीके शब्दोंमें स्वराज्य-की व्याख्या कर डालें, यह तय कर लें कि जो स्वराज्य हम चाहते हैं वह कैसा होगा, उसमें किसको क्या अधिकार होगा। फिर उनलोगोंको, हमारे शब्दोंमें उन वर्गों—क्योंकि हमारे विचारमें वर्ग-बाहुल्य और वर्ग-सहकारके आधारपर कोई संतोषजनक योजना नहीं बन सकती—उस स्वराज्यकी प्राप्तिके लिये संघटित करें। यह संघटन रचनात्मक नहीं हो सकता, विनाशात्मक ही हो सकता है। अपने नित्यके संघर्षसे ये वर्ग वह बल प्राप्त करेंगे जो अन्तिम मोर्चेमें काम आयेगा।

किसानों और मजदूरोंके संघटनका क्या आधार हो सकता है?

गहमरीजीका ख्याल है कि हमलोग श्रमिकों और कृषकोंका हवाई संघटन करना चाहते हैं। आश्चर्य है कि वे ऐसा सोचते हैं। वस्तुतः यह आक्षेप तो उस संघटनके बारेमें किया जा सकता है जिसका जिक्र अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके पटना-वाले रचनात्मक कार्यक्रममें है और जो बम्बईमें दुहराया गया। आप मजदूरोंसे कहते हैं—संघटित हो। वह पूछते हैं—किस-लिये? यदि आप कहें कि संघटित होकर अपना काम बनाओ और हमारे स्वराज्य-युद्धमें भी मदद दो तो वह पूछ सकते हैं—हम अपना कौनसा काम बनायें? स्वराज्य होनेपर हमको क्या

मिलेगा ? इसका जवाब इतनेसे नहीं हो सकता कि "तुम सुखी रहोगे।" वह कह सकते हैं कि यूरोप और अमेरिकामें स्वराज्य है पर वहांके मजदूर सुखी नहीं हैं। यदि आपके स्वराज्यमें भी मिल-मालिक रहेंगे तो हमको यह विश्वास कैसे हो कि हम सुखी होंगे। यह प्रश्नोत्तर काल्पनिक नहीं है। मजदूरोंसे मिलिये, फिर देखिये कि वह यह प्रश्न उठाते हैं या नहीं। मजदूरोंका संघटन कैसे होना चाहिये, यह तो गहमरीजी अखिल भारतीय मजदूर संघसे, जिसके मातहत प्रायः सभी श्रमिक संस्थाएँ हैं, देख लें। उसका आधार आर्थिक है और उसकी अपनी राजनीतिक नीति है। वे ऐसा स्वराज्य चाहते हैं जिसमें पूँजीपति न हो। पदे पदे मिल-मालिकोंसे संघर्ष (सहयोग नहीं) करते हैं। इसी तरह जमींदारी प्रथाके अन्त करनेके आधारपर ही कृषकोंका संघटन हो सकता है। कृषक आपके ऐसे स्वराज्यके लिये क्यों जान दें जिसमें जमींदार उसको सतानेके लिये मौजूद रहेगा ? यदि कांग्रेस इन महाशक्तियोंसे काम लेना चाहती है तो उसे उनको इसी प्रकारका वचन देना होगा और इस प्रकारके संघटनके लिये तैयार रहना होगा। ऐसा संघटन देशमें तो शुरू हो गया है, कांग्रेस उसके प्रति क्या रुख रखेगी यह वह जाने। हम समाज-वादी तो अपनी राय दे चुके हैं। हम तो ऐसा मानते हैं कि इन शोषित वर्गोंके वर्गहितोंके आधारपर ही इनका संघटन हो सकता है और यही संघटन श्रेयस्कर हो सकता है।

असली और नकली साम्यवाद

[लेखक—आचार्य नरेन्द्रदेव]

जब डाक्टर अनसारी ऐसे महानुभाव नब्बे फ़ीसदी साम्यवादी होनेका दावा करते हैं और साथ-साथ इस बातपर खुशी भी जाहिर करते हैं कि कांग्रेसको साम्यवादसे कोई खतरा नहीं है, तो मैं इसकी ज़रूरत महसूस करता हूँ कि खरे और खोटेका फ़र्क साफ कर दिया जाय, जिसमें असली और नकली वस्तुकी पहचानमें कोई दिक्कत न हो। मैं डाक्टर महोदय तथा किसी दूसरे सज्जनकी नेकनीयती और ईमानदारीपर किसी प्रकारका हमला नहीं करता। मैं मानता हूँ कि अपने देशमें बहुतसे ऐसे सज्जन हैं, जो निहायत ईमानदारीके साथ सच्चे दिलसे यह सरल विश्वास रखते हैं कि साम्यवादके स्वरूपके सम्बन्धमें जो धारणा उन्होंने बना ली है, वही ठीक है। इनमें बहुतसे ऐसे सज्जन हैं जो साम्यवादके वास्तविक स्वरूपसे अपरिचित हैं; उन्होंने वैज्ञानिक साम्यवादका अध्ययनतक नहीं किया है। वैज्ञानिक साम्यवाद गम्भीर चिन्तन और अध्ययनका विषय अवश्य है, तिसपर भी उसके स्थूल सिद्धान्तोंके समझनेमें कोई

कठिनाई नहीं प्रतीत होती। बहुतसे हमारे ऐसे भाई भी हैं, जो वैज्ञानिक साम्यवादके मौलिक सिद्धान्तोंको जानते हुए भी अपनी एक भिन्न कल्पनाको ही सच्चा साम्यवाद मानते हैं।

पहले तो हमें ऐसे लोगोंका विचार करना है जो कल्पनाके साम्राज्यमें स्वच्छन्द विचरण करते हैं और तरह तरहके हवाई महल बनाया करते हैं। जो देश वर्तमान कालमें हीन दशाको प्राप्त हो गया है और जो अतीतके गौरवकी कथासे विशेष रूपसे प्रभावित है, वह अतीतमें ही स्वर्ण-युगकी स्थापना करता है और जब कभी वह अपनी उन्नतिकी बात सोचता है, तो वह उसी स्वर्णयुगको फिरसे वापिस लानेकी चेष्टा करता है। ऐसे देशमें एक ऐसे समुदायका पैदा हो जाना अत्यन्त स्वाभाविक है, जो विश्वास करता है कि अतीतका समाज ही एक आदर्श समाज था जिसमें गरीब-अमीरका फर्क नहीं था और जिसमें सारी प्रजा सुखी और समृद्ध थी, वह एक क्षणके लिए भी नहीं सोचता कि अतीतका वापिस आना कितना असम्भव है। वह इस बातको माननेको भी तैयार नहीं है कि अतीत उतना सुन्दर और मनोरम नहीं था जितना कि वह सोचता है। हम यह मानते हैं कि पूँजी-वादी पद्धतिकी बुराइयाँ प्राचीन समाजमें नहीं पायी जाती थीं; पर इसमें भी सन्देह नहीं है कि उसकी निजकी बुराइयाँ कुछ कम न थीं। प्राचीन समाजमें इस बातकी भी आशा नहीं की जा सकती थी कि श्रमजीवियोंका कोई संगठन बन सकेगा, जो उनको अत्या-चारोंसे छुटकारा दिलावे।

इस विचारके लोग साम्यवादके प्रभावको बढ़ते देखकर अपनी कल्पना तथा साम्यवादके सिद्धान्तोंमें सामंजस्य स्थापित

करनेकी चेष्टा करते हैं। जिस प्रकार विज्ञानके इस युगमें प्रत्येक मजहब, जो इस नये वातावरणमें जीवित रहना चाहता है, इस बातको साबित करनेकी कोशिश करता है कि उसके सिद्धान्त विज्ञान-सम्मत हैं, उसी प्रकार प्रत्येक समुदाय, जो राजनीतिक-क्षेत्रमें अग्रसर होना चाहता है, उसे विवश होकर यह दिखलाना पड़ता है कि उसकी कल्पनाएँ साम्यवादके सिद्धान्तके विरुद्ध नहीं हैं। जो लोग अतीतमें ही स्वर्ण-युगकी कल्पना करते हैं, वह इस बातके दिखलानेकी चेष्टा करते हैं कि अतीतका समाज ही साम्यवादके सच्चे सिद्धान्तोंपर आश्रित था। पाश्चात्य देशोंमें तो ईसाइयोंने इस प्रकारके प्रयत्न किये हैं। इसीके फल-स्वरूप वहाँ Christian Socialism पाया जाता है। इसके अनुयाइयोंका कहना है कि क्रिश्चियन धर्म और साम्यवाद एक दूसरेके लिये नितान्त आवश्यक हैं और क्रिश्चियन धर्म ही साम्यवादका नैतिक आधार है। उनका यह भी विश्वास है कि साम्यवादकी विचार-पद्धतिका जन्म ही इसी धर्मसे हुआ है। यदि अपने देशमें भी इस प्रकारके प्रयत्न किये जावें, तो मुझको आश्चर्य न होगा।

हिन्दू चाय और मुसलिम चायकी तरह हिन्दू साम्यवाद और मुसलिम साम्यवादके पैदा होनेमें देरी न लगेगी।

वैज्ञानिक साम्यवादको ऐसे विचारोंका विरोध करना पड़ेगा, क्योंकि ये विचार निराधार और कल्पित हैं और इसलिये इनके सफल होनेकी कोई भी सम्भावना नहीं है। अतीतके पुनरुज्जीवन-का प्रयत्न बालूमेंसे तेल निकालनेके प्रयत्नकी तरह सर्वथा विफल होगा। ऐसे विचारोंका प्रचार कर हम देशको ग़लत रास्तेपर ही ले जावेंगे। केवल कल्पनाके बलसे हम अपना अभीष्ट सिद्ध

नहीं कर सकते। यदि हम मशीन-युगकी बुराइयोंसे बचना चाहते हैं, तो उसका यह तरीका नहीं है कि हम पीछे कदम रक्खें और सारी औद्योगिक उन्नतिका खात्मा करके संसारकी ग़रीबी और मुसीबतको और भी बढ़ा दें। इन बुराइयोंके अन्त करनेका एकमात्र तरीक़ा वैज्ञानिक साम्यवाद है। इस तरीकेके बर्तनेसे हम पूँजीवादी प्रथाके लाभको सुरक्षित रखते हुए उसके दोषोंको दूर कर सकेंगे, अन्यथा नहीं।

इतिहाससे पता चलता है कि प्राचीन कालमें कई देशोंमें भूमि व्यक्तिकी सम्पत्ति न होकर समाजकी सम्पत्ति मानी जाती थी। रूसमें ऐसी ग्राम-संस्थाएँ १९ वीं शताब्दीतक पायी जाती थीं। भारतवर्षके साहित्यसे भी ऐसी संस्थाओंकी सत्ताका पता चलता है। यद्यपि साम्यवादकी व्याख्याके अनुसार साम्यवादका लक्षण यही है कि उत्पादनके साधन व्यक्ति विशेषकी मिलकियत न होकर समाजकी मिलकियत हों, तथापि हमको इस भूलमें न पड़ना चाहिये कि यह प्राचीन ग्राम-संस्थाएँ वैज्ञानिक साम्यवाद-के सिद्धान्तपर आश्रित थीं। उत्पादनके जो तरीके उस समय काममें आते थे, उनसे सम्पत्ति इतनी प्रचुरतामें नहीं उत्पन्न हो सकती थी कि साम्यवादके उद्देश्योंकी पूर्ति हो सके। हमको यह ध्यानमें रखना चाहिए कि साम्यवादका उद्देश्य समाजके धनको सबमें बराबर-बराबर बाँटना नहीं है। यदि यही उद्देश्य हो, तो अत्यन्त निर्धन देशोंमें इस बँटवारेका फल यही होता कि अमीर-लोग तो गरीब हो जाते; पर गरीबोंकी गरीबी दूर नहीं होती। वैज्ञानिक साम्यवाद गरीबीको दूर करना चाहता है, न कि कुछ अमीरोंसे कुढ़कर उनको तबाह करना। इसलिए वैज्ञानिक

साम्यवादकी कल्पना भी मशीन-युगके पहले नहीं हो सकती थी। मशीन-युग तथा उसमें पैदा होनेवाला वर्तमान पूँजीवाद ही वैज्ञानिक साम्यवादका जन्मदाता है। मशीनके द्वारा जो औद्योगिक उन्नति हुई है, उसने यह प्रमाणित कर दिया है कि प्रचुरताके इस युगमें जब लोग इसलिए मुसीबत नहीं उठाते कि संसारमें भोजन तथा सुखकी सामग्रीकी स्वल्पता है बल्कि इसलिए कि उत्पादनके साधनोंके मालिक अपने स्वार्थके लिये, न कि समाजके हितके लिए, वस्तुओंका उत्पादन करते हैं, साम्यवादको प्रतिष्ठा करना सम्भव हो गया है। मशीनयुगके पहले सम्पत्तिकी वृद्धिका कोई ऐसा बड़ा जरिया नहीं था और इसीलिए उस जमानेमें चाहे भूमिपर समाजका ही क्यों न अधिकार रहा हो, साम्यवाद द्वारा समाजकी गरीबी नहीं दूर की जा सकती थी।

इसका जिक्र करना यों आवश्यक प्रतीत हुआ कि रूसके इतिहासमें हमको एक राजनीतिक दलका (Narodnik) उल्लेख मिलता है जिसकी विचार-पद्धति इसी प्रकारकी थी। यह दल रूसमें ऐसी ग्राम-संस्थाओंको कायम करना चाहता था, जिनमें भूमिका स्वत्व व्यक्तियोंके हाथमें न होकर सारे समाजके हाथमें हो। इनलोगोंका विचार था कि ऐसा करनेसे हम साम्यवादकी प्रतिष्ठा भी कर सकेंगे और मशीनयुगके दोषोंसे भी मुक्त रह सकेंगे। रूसके वैज्ञानिक साम्यवादियोंको इनका घोर विरोध करना पड़ा था और वे इनके मुकाबलेमें तभी सफल हो सके थे, जब बारंबार विफल होनेके कारण लोगोंका इनकी नीतिपरसे विश्वास उठ गया था। रूसके इतिहाससे यह भी पता चलता है कि रूसी-क्रान्तिके समय Narodnik ने साम्यवादियोंका विरोध

किया था और क्रान्तिके दबानेमें श्रम-जीवियोंके विरुद्ध पूँजीपतियोंकी सहायता की थी।

अपने देशमें अभी ऐसा कोई दल पैदा नहीं हुआ है, पर जो लोग अतीत कालमें स्वर्णयुगकी तलाश करते हैं, वह इन्हीं ग्राम-संस्थाओंका आश्रय लेकर इसी प्रकारके साम्यवादकी कल्पना कर सकते हैं।

यह एक आश्चर्यकी बात है कि अपने देशमें जो लोग मशीन-युगके विरोधी हैं और जिनकी आँख भविष्यपर न होकर अतीत पर है, वह Narodniks की तरह कौंसिलोंमें जानेके भी सिद्धान्ततः विरोधी हैं। दोनोंमें विचार-साम्य होनेसे कार्यमें भी समानता पायी जाती है। और इसी विचारके लोगोंमेंसे Narodnik के भाई निकल सकते हैं।

अपने देशमें एक और वर्ग है, जो समाजकी वर्तमान व्यवस्थाको कायम रखना चाहता है, पर देखता है कि उस व्यवस्थासे जो दोष उत्पन्न हुए हैं यदि वह दूर नहीं किये जावेंगे तो वर्तमान समाजका नाश हो जायगा; इसलिए यह वर्ग वर्तमान व्यवस्थामें बिना किसी प्रकारका मौलिक परिवर्तन किये उसके दोषोंको दूर करनेकी चेष्टा करता है। अधिकतर लोग इसी वर्ग-के हैं। यह वास्तवमें समाज सुधारक हैं। इन्हें समजावादी न कहना चाहिए पर यह लोग भी अपनेको साम्यवादी कहनेकी हिम्मत दिखाते हैं। ये नाना प्रकारके सुधारकी योजनाएँ उप-स्थित करते हैं और वर्तमान समाजके संकटको टालनेका प्रयत्न करते हैं। इस वर्गमें ऐसे बहुतसे लोग शामिल हैं, जो सद्भावसे प्रेरित होकर गरीबीको दूर करनेकी चेष्टा करते हैं। हम उनके

त्यागका आदर करते हैं, पर इसका यह अर्थ नहीं है कि जिस नीतिका वह अनुसरण करते हैं उसका हम भी समर्थन करें। सुधारको इस नीतिसे एक साम्यवादीका अभीष्ट सिद्ध नहीं हो सकता। इस नीतिका बराबर विरोध करना चाहिए; क्योंकि खुले विरोधियोंको अपेक्षा इस नीतिके समर्थकोंसे वैज्ञानिक साम्यवादको अधिक नुकसान पहुँचता है।

एक और भी वर्ग हो सकता है, जो साम्यवादियोंकी उन माँगोंमेंसे कुछ माँगोंको स्वीकार कर ले, जो परिवर्तनकी अवस्थाको दृष्टिमें रखकर तैयार की गयी हैं और इसी नाते साम्यवादी होनेका दावा पेश करें। इन माँगोंमें कई ऐसी माँगें हैं, जो व्यक्तिगत सम्पत्तिका अन्त तो नहीं करतीं; किन्तु उनको मर्यादित अवश्य कर देती हैं। बड़े-बड़े टैक्स तथा वारिसोंपर टैक्स ऐसे उपाय हैं जिनमें व्यक्तियोंकी सम्पत्तिका नियन्त्रण हो सकता है; पर इससे गरीबीका अन्त निश्चय ही नहीं होता। इस वर्गकी भूल यही है कि यह समझता है कि ये सब उपाय गरीबी तथा समाजकी अन्य प्रचलित बुराइयोंको दूर करनेके लिए पर्याप्त हैं। इसके प्रतिकूल एक साम्यवादी ऐसी माँगोंका समर्थन केवल इसलिये करता है कि वह जानता है कि व्यक्तिगत सम्पत्तिका लोप एकबारगी नहीं हो सकता।

मेरी छोटी बुद्धिमें यही आता है कि कांग्रेस धीरे-धीरे इसी विचार-पद्धतिका समर्थन करने लगेगी। कांग्रेससे वैज्ञानिक साम्यवादियोंको सचेत रहना चाहिये और उन्हें सुलह और समझौतेके नामपर अपने आदर्शसे नहीं गिरना चाहिये।

साम्यवादके कितने मुख्य-मुख्य विकृत रूप हैं या हो सकते

हैं, उनकी चर्चा थोड़ेमें मैंने ऊपर की है। पाश्चात्य देशोंमें सब रूप और प्रकार पाये जाते हैं।

वैज्ञानिक साम्यवाद न तो सुधारवाद है और न काल्पनिक साम्यवाद। यह तर्ककी कसौटीपर कसा जा सकता है और यह समाजको एक ऐसी नवीन आर्थिक व्यवस्था प्रतिष्ठित करना चाहता है, जिसमें उत्पादनके साधन तथा उत्पन्न वस्तुओंका वितरण और विनिमय समाजके हाथमें हो।

वर्तमान औद्योगिक पद्धतिके युगके पहले वैज्ञानिक साम्यवाद-की प्रतिष्ठा करना सर्वथा असम्भव था। योरपकी औद्योगिक क्रान्तिके फल-स्वरूप ही वैज्ञानिक साम्यवादका जन्म हुआ है।

मशीनके युगमें ही बड़े पैमानेपर उद्योगका होना सम्भव हो सका है और वस्तुओंकी पैदावार असीमित मात्रामें बढ़ायी जा सकती है, पर आपसकी स्पर्द्धाके कारण पूँजीपतियोंमें मुनाफेके लिये होड़-सी लग गयी और माल खपतसे कहीं ज्यादा तैयार होने लगा। इसीलिये समय-समयपर व्यापारमें संकटकी अवस्था उपस्थित होती रही है। आजकल जो विश्वव्यापी अर्थ-संकट है, इससे छुटकारा पाना कठिन-सा मालूम पड़ता है। लोगोंका कष्ट बढ़ता ही जाता है। एक तरफ बेकारी बढ़ती जाती है; दूसरी ओर पूँजीपतियोंकी कीमत बढ़ानेके लिये पैदावारको कम करना पड़ता है। जिस प्रकारसे आजका व्यवसाय पूँजी-पतियोंद्वारा संचालित होता है, उससे पैदावारकी वृद्धिमें भारी रुकावट होती है। यह संकटकी अवस्था तभी दूर हो सकती है, जब एक सर्वथा विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाका आयोजन किया जावे। नये समाजमें स्पर्द्धाको कोई स्थान नहीं रहेगा और एक

निश्चित आयोजनाके अनुसार तथा समाजके सब सदस्योंकी आवश्यकताओंको पूरा करनेके लिये समाजके औद्योगिक जीवनका संचालन किया जावेगा। जब समाजके हितके लिए उद्योग-व्यवसायका संगठन होगा और उत्पादनके सारे साधन व्यक्तियोंकी मिलकियत न होकर समाजकी मिलकियत बन जावेंगे, तो अपने साधनोंके अनुसार समाज-जीवनकी आवश्यकताओंको पूरा करनेके लिये इतने परिमाणमें वस्तुओंका उत्पादन करेगा कि समाजके प्रत्येक सदस्यको पूरी स्वतन्त्राके साथ अपनी शक्तियोंके विकासका अवसर मिलेगा। समाजके हाथमें जब उत्पन्न वस्तुओंका वितरण और विनिमय रहेगा, तो समाजमें दारिद्रता और अशान्तिके स्थानमें तुष्टि, पुष्टि और शान्ति आ विराजेगी। आज जो पैदावारको कम करनेकी कोशिश की जा रही है उसके कम करनेका कोई कारण नहीं रह जायगा। पैदावार तेज रफ्तार-से बढ़ेगी। देहातोंकी आज जो खराब हालत है, वह दूर हो जावेगी और अर्थ-शोषणकी नीतिका अन्त होगा।